THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180214

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H891 D15K Accession No. G.H.3170

Author दामले, कृ. वि.

Title कविश्री माला : मराठी १९६२

This book should be returned on or before the date last marked below.

कवि-श्री माला

* मराठी *

कवि :

कृष्णाजी केशव दामले 'केशवसुत'

सम्पादक–अनुवादक

प्रह्लाद नरहर जोशी

"भारत सरकार की ओर से भेंट"

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

प्रकाशक :

मोहनलाल भट्ट
मन्त्री :
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
हिन्दीनगर, वर्धा

● ● ●

Checked 1969

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण—३०००
जून, १९६२
मूल्य—रु. २/-

● ● ●

मुद्रक :

मोहनलाल भट्ट
राष्ट्रभाषा प्रेस,
हिन्दीनगर, वर्धा

● ● ●

आमुख

हर्षका विषय है कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा अपने कार्य कालके २५ वर्ष सन् १९६१ में पूरे कर रही है। इस उपलक्ष्यमें मनाये जानेवाले रजत-जयन्ती महोत्सवके अवसर पर सभी भारतीय भाषाओंके मान्य कवियोंका तथा उनके उत्कृष्ट काव्यका परिचय 'कवि-श्री माला' की पच्चीस पुस्तकोंमें हिन्दी-गद्यानुवाद सहित प्रकाशित करनेकी योजनाके अन्तर्गत प्रस्तुत ग्रन्थ पाठकोंके समक्ष आ रहा है।

यद्यपि किसी भी भाषाके सर्वश्रेष्ठ काव्य-सर्जकका निश्चय करना एक कठिन कार्य है, फिर भी अपनी सीमाओंको ध्यानमें रखते हुए गण्यमान्य उन-उन भाषाओंके विद्वानोंकी रायसे ही चुनावका कार्य सम्पन्न किया गया है।

प्रत्येक पुस्तकके आरम्भमें जिस भाषाके कविकी रचनाओंका चयन किया गया है, उस भाषाके साहित्यका परिचय और कवि विशेषका परिचय दिया गया है। जिस भाषाके दो कवियोंका चुनाव किया गया है, उनका चुनाव करते समय सन् १९२० से पूर्वका साहित्य और १९२० से बादका साहित्य--इस तरहसे एक विभाजन-रेखा ध्यानमें रखी गई है। इसका कारण यह है कि लगभग सन् १९२० के पूर्वके तथा १९२० के बादके साहित्यमें प्रवाहित विचार-धारामें एक विशेष प्रकारका अलगाव-सा पाया जाता है।

डॉ. प्रह्लाद नरहर जोशी एम. ए., पीएच. डी. ने प्रस्तुत पुस्तकमें संकलित साहित्यको चुनने, काव्यांशको सम्पादित तथा अनूदित कर सारी सामग्रीको इस रूपमें प्रस्तुत करनेमें सहयोग दिया है। पुस्तकमें संकलित चित्र का ब्लॉक श्री पं. मु. डागरेजीके सद्प्रयत्नोंसे उपलब्ध हुआ है। संग्रहकी आवरण डिजाइनको बनवा देनेमें श्री व्ही. एन. अडारकरजी (डीन, सर जे. जे. इन्स्टीट्यूट आफ अप्लाईड आर्ट, बम्बई) का उदार सहयोग मिला है, उसके लिए समिति सभीकी आभारी है।

इसके अतिरिक्त छपाई तथा अन्यान्य दृष्टियोंसे जिन-जिनका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग मिला है, उनके प्रति भी समिति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है।

आशा है, प्रस्तुत संग्रह पाठकोंको रुचिकर एवं उपयोगी प्रतीत होगा।

मन्त्री,
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

अनुक्रमणिका

	पृष्ठांक
मराठी-साहित्य-परिचय [प्रारम्भसे १९२० तक]	१
कवि-परिचय	२५
काव्य-सञ्चय	४१

कवि-श्री माला
मराठी

कृष्णाजी केशव दामले 'केशवसुत'

मराठी साहित्य परिचय

[प्रारम्भसे १९२० तक]

मराठी भाषा
और
उसका साहित्य

• • •

(अ) प्राचीन मराठी साहित्य :

भारतवर्षकी चौदह प्रमुख भाषाओंमें महाराष्ट्री या मराठी एक महत्व-पूर्ण भाषा है। मराठीका पहला महत्वपूर्ण काव्य, तत्वज्ञानका ग्रन्थ ज्ञानेश्वरी या ज्ञानदेवी है। इस ग्रन्थमें ज्ञानदेवने सन् १२९० में भगवद्गीताका भावार्थ मराठीमें बहुत रोचक ढंगसे सर्वसाधारणके लिए प्रस्तुत किया। यदि यह कहा जाय कि मराठीमें ज्ञानदेवीके समान दूसरा कोई भी ग्रन्थ अभी तक नहीं हुआ है, तो शायद कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। पर प्रश्न यह है कि किसी भाषाके प्रारम्भ कालमें क्या इस प्रकारके ग्रन्थकी रचना हो सकती है? भाषा-विज्ञानके अनुसार ज्ञानदेवीके पूर्व अर्थात् सन् १२९० से पूर्व तीन-चार शताब्दियोंमे मराठी भाषा बोलचालके स्वरूपमें अवश्य ही थी। सन् ७१८ मे उद्योतनसूरिने कुवलय-माला नामके एक ग्रन्थमें अठारह भारतीय भाषाओंमें 'मरहट्ठ' भाषाका उल्लेख किया है। संस्कृतके समान अनेक प्राकृत भाषाएँ भारतमे पूर्वकालसे ही चलती आई थीं। उनमेंसे महाराष्ट्री प्राकृतका महाराष्ट्री अपभ्रंश ई. स. ४०० के लगभग प्रचलित हुआ और उच्चारण-प्रक्रिया, प्रत्यय-प्रक्रिया और शब्द-सिद्धिके अनुसार यह निश्चित हुआ है कि

इसी महाराष्ट्री अपभ्रंशसे धीरे-धीरे सातवीं या आठवीं शताब्दीमें मराठी भाषा सगुण-साकार होने लगी। इससे भी पूर्व एकाध मराठी शब्द पुराने ताम्रपत्रों और शिलालेखोंमें मिलता है। सन् ९८३ के श्रवणबेळगोळ (मैसूरके पास) के शिलालेखमें 'श्री चामुण्डराये करवियलें गंगराजें सुतालें करवियलें' ये दो मराठी वाक्य मिलते हैं। प्राचीन मराठीका यह आरम्भ ज्ञानदेवीके पूर्व ३०७ वर्षोंका है।

श्री चक्रधरका महानुभाव पन्थ :

उन तीन शताब्दियोंमें प्राचीन मराठीमे दो प्रमुख साहित्य-धाराएँ प्रचलित थीं। एक, नाथ-सम्प्रदायके मुकुन्दराजकी और दूसरी, महानुभाव सम्प्रदायके श्री चक्रधरकी। मुकुन्दराज (सन् ११२८–११९८) का पहला मराठी ग्रन्थ 'विवेकसिन्धु' (सन् ११८८) है। आत्मा और विश्वात्माके अद्वैत रूपको योगमार्गसे सिद्ध करनेवाला यह ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। मुकुन्दराजका दूसरा ग्रन्थ है परमामृत, जिसमें स्थूलदेह, लिंगदेह, कारणदेह आदि विषयोंका विवेचन आया है। धर्म और तत्व-ज्ञानका औचित्यपूर्ण सामञ्जस्य मुकुन्दराजके ग्रन्थोंमे मिलता है। मुकुन्दराजकी नाथ-परम्परा आदिनाथ, हरनाथ, रघुनाथ, मुकुन्दराज इस प्रकारकी है। इस कालकी दूसरी प्रमुख साहित्य-धारा महानुभाव पन्थकी है। परमेश्वरकी भक्ति, अध्यात्म-विचार, धर्म-तत्वज्ञान आदि विषयोंका प्रसार 'बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय' मराठीमें सर्वप्रथम करनेवाले सन्त है श्री चक्रधर। श्रीकृष्ण और दत्तात्रेय इन दो उपास्य देवोंपर आधारित यह धर्म-पन्थ अवैदिक है, ऐसा विद्वानोंने स्वीकार किया है। स्त्री-शूद्रादिके लिए ज्ञानभक्तिमार्ग महानुभाव पन्थने शुरू किया। सन्यास मार्गपर विशेष जोर देनेवाले इस सम्प्रदायमें वैराग्य और नीतिपर अनेक ग्रन्थ रचे गए।

महानुभाव पन्थके श्री चक्रधरका आगमन जिस कालमे महाराष्ट्रमे हुआ, उस वक्त महाराष्ट्रमे स्वराज्य था। यादववशीय राजाओंका उसपर शासन था और राजा लोग स्वयं ही महाराष्ट्रीय थे। चक्रधरके समय चातुर्वर्ण्यके आधारपर वैदिक धर्म प्रचलित था। इस धर्मने भारतीय समाजको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णोंमे विभक्त कर दिया था। इन वर्णोंमे परस्पर रोटी-बेटीका व्यवहार बन्द था। परम्पराके अनुसार ब्राह्मणसे क्षत्रिय, क्षत्रियसे वैश्य, और वैश्यसे शूद्र कनिष्ठ बन गया था। समाजके सभी धार्मिक-व्यवहारों तथा ज्ञान-विज्ञानके ठेकेदार ब्राह्मण बन गए थे और शूद्रोंको सारे वर्णोंकी सेवा करनेकी गुलामी प्राप्त हुई। ब्राह्मण धर्ममें केवल कर्मकाण्ड और वाह्याचारकी ही प्रतिष्ठा बढ़ गई थी। इसी प्रकारकी सामाजिक स्थितिमें श्री चक्रधरका कार्य प्रारम्भ हुआ। वेदोंकी और परम्परागत धर्मकी गति रुद्ध कर महानुभाव सम्प्रदाय अपने नए मार्गपर आगे बढ़ने लगा। वर्ण-समानता और स्त्री-पुरुषोंकी समता प्रस्थापित करनेका प्रयत्न इस पन्थने किया। स्वयं चक्रधर

अस्पृश्यताको नहीं मानते थे। उनका आदेश था कि आवश्यक होनेपर--"महार-वाडाहौनि धर्म काढावा" (सूत्रपाठ--आचार १४९)--अछूतोंकी बस्तीमें जाकर भी धर्मका ज्ञान प्राप्त किया जाना चाहिए। अछूतोंके हाथोंसे अन्नोदक ग्रहण करनेमें उन्हें तनिक भी हिचकिचाहट नहीं मालूम पड़ी। इस प्रकार चक्रधर और उनके अनुयाईयोंने अपने धार्मिक विचारोंका प्रसार समाजके सभी स्तरोंमें किया। श्री चक्रधरके विचारोंका संग्रह "लीला चरित्र" नामक ग्रन्थमे है। मराठीका यह पहला गद्य-ग्रन्थ अनेक दृष्टियोंसे बहुत महत्वपूर्ण है। महानुभाव सम्प्रदायमें केसोबास, लक्ष्मीन्द्र भट्ट, दामोदर भट्ट, भास्कर भट्ट, बोरीकर, केशवाचार्य, नरेन्द्र पण्डित आदि विद्वान् ब्राह्मण आए और चक्रधरके तत्वज्ञानका प्रचार करने लगे। 'वच्छहरण' (दामोदर-पण्डित),'रुक्मिणी स्वयंवर'(नरेन्द्र),'शिशुपाल वध'(भास्कर),'उद्धवगीता'(भास्कर), 'ज्ञानप्रबोध'(विश्वनाथ),'सह्याद्रि वर्णन'(राघो व्यास)और'ऋद्धिपूरवर्णन'(नारायण पण्डित) ये सात ग्रन्थ महानुभाव सम्प्रदायमें अति महत्वपूर्ण माने जाते हैं। महानुभाव पन्थके उद्देश्य बहुत उच्चस्तरीय होते हुए भी अनेक कारणोंसे यह पन्थ अप्रिय होने लगा। चातुर्वर्ण्यपर आघात, अवैदिक मत-परम्परा, सन्यास धर्मकी विडम्बना, मठ-वासियोंमे अनीतिका प्रसार, आचार-धर्मकी हीनता आदि अनेक दोष इस पन्थमें अंगीभूत बनकर सामने आए और पन्थका कार्य धीरे-धीरे समाप्त हो गया। मराठीके सर्वप्रथम साहित्यका निर्माण महानुभाव सम्प्रदायके अनुयाइयों द्वारा ही हुआ है। उस सम्प्रदायकी अब यही एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सिद्धि रह गई है।

श्री ज्ञानदेव (१२७५–१२९६) : जिस नाथसम्प्रदायमें मराठीके प्रथम कवि मुकुन्दराज हुए, उसी पन्थमे ज्ञानदेवकी परम्परा एक अद्भुत कार्य करने लगी। आदिनाथ--मत्स्येन्द्रनाथ--गोरखनाथ --गैनीनाथ --निवृत्तिनाथ और ज्ञाननाथ या ज्ञानदेव। निवृत्तिनाथ ज्ञानदेवके बड़े भाई थे। ज्ञानदेवके चरित्रकी कथा बड़ी रोचक और करुणापूर्ण है। गोदावरी नदीके किनारे पैठण नगरीके पास आपेगांव है। वहाँके गोविन्दराव कुलकर्णीके पुत्र विट्ठलपन्त एक अत्यन्त विरक्त और बैरागी महापुरुष थे। भाग्यवशात् उनका विवाह पूनाके पास आळन्दी क्षेत्रके सिद्धोपंत कुळकर्णीकी कन्या रुक्मिणीसे हुआ; लेकिन विट्ठलपन्तका चित्त तीर्थाटनके लिए तड़प रहा था। उनके मनमें न शान्ति थी और न प्रपंचके लिए आसक्ति। उन्होंने काशी जाकर वहाँके श्रीपादस्वामीसे संन्यास दीक्षा ले ली और तबसे वे चैतन्यस्वामी नामसे जाने-जाने लगे। जिन श्रीपादस्वामीने उन्हें संन्यास दीक्षा दी थी, उन्हें मालूम हुआ कि चैतन्यस्वामी "गृहस्थाश्रमी" हैं, और उनका सन्यासग्रहण विधिपूर्वक नहीं हो सकता। तब उन्होंने चैतन्यस्वामीको पुनः गृहस्थाश्रम स्वीकार करनेकी आज्ञा दी। चैतन्य फिर विट्ठल बनकर आळन्दी

लौट आए और रुक्मिणीके साथ गृहस्थ-जीवन बिताने लगे। समाजके शास्त्री-पण्डितोंने उस गृहस्थ-जीवनका उपहास किया। संन्यास लेकर क्या कोई फिर गृहस्थ बन सकता है? यह सब आचार संन्यासधर्मकी परम्पराके विरुद्ध है। गाँवकी शिष्ट जनता विट्ठलपन्तका दर्शन भी अशुभ मानने लगी। आळन्दीके ब्राह्मणोंने उनको बहिष्कृत किया। विट्ठलपन्तका गाँवमें रहना मुश्किल हो गया। आखिर वे गाँव छोड़कर इन्द्रायणीके किनारे एक झोपड़ी बनाकर रहने लगे। इसी अवस्थामें उन्हें चार सन्तानें हुई—निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव और मुक्ताबाई। आळन्दीके धर्ममार्तण्डोंद्वारा विट्ठलपन्तके पुत्रोंको उपनयनका अधिकार न दिए जानेके कारण माता-पिता चिन्ताग्रस्त हुए। अपने पुत्रोंको दुर्दशासे बचानेके लिए उन्होंने ब्राह्मणोंके बताए हुए देहान्त प्रायश्चित्तको स्वीकार किया। एक दिन रातमें सबको सोते हुए छोड़कर वे घरसे बाहर निकले और नदीमें उन्होंने अपना देह समर्पित कर दिया। इस प्रायश्चित्तके बाद भी ज्ञानदेवादि बालक 'ब्राह्मण' न बन सके, न उनको उपनयनका अधिकार प्राप्त हुआ। शिष्ट वर्गीय फिर उनको अछूतोंके समान मानने लगे। इन अछूतोंकी शुद्धि कैसे सम्भव हो? सब भाई आळन्दीके ब्राह्मणोंका पत्र लेकर पैठण गए। वहाँ भी इन सन्यासीके लड़कोंको उपनयनका अधिकार न मिला, लेकिन कुछ चमत्कार देखकर पैठणके ब्राह्मण प्रभावित हुए और इन तीनों भाइयोंको वे देवता मानने लगे। जो स्वयं ही ब्रह्म है, अथवा ब्रह्मको जाननेवाले हैं, उनसे प्रायश्चित्त कौन करवा सकता है? पैठणसे ज्ञानदेव नेवासे नामक गाँव आए और वहाँ उन्होंने सन् १२९० में भगवद्गीतापर अपनी सुविख्यात मराठी टीका ज्ञानेश्वरी या ज्ञानदेवी लिखी।

ज्ञानदेवकी ज्ञानेश्वरी मराठीका सबसे महत्वपूर्ण तत्वज्ञान-विषयक काव्य-ग्रंथ है। आश्चर्यकी बात है कि इस समय ज्ञानदेव केवल सोलह वर्षके थे। समाजके शिष्टोंद्वारा बहिष्कृत होनेसे उन्होंने समाजके सभी स्तरोंका अच्छी तरहसे निरीक्षण किया था। ज्ञानदेवने देखा कि बहुजन समाजको धर्मविचार, तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान, अध्यात्म-विद्या आदिके बारेमें किसी प्रकारका कोई अधिकार न था। लोग पीड़ित थे, अधिकारोंसे वञ्चित थे। शूद्रोंके लिए ईश्वर प्राप्तिका मार्ग बतलानेवाला भगवद्गीता नामक महत्वपूर्ण-ग्रन्थ अपने ढंगका एक ही है। धर्मशास्त्रकी दृष्टिसे स्त्रीवर्ग भी शुद्रवत् बन गया था। वैदिक परम्पराने उनके लिए आध्यात्मिक प्रगतिके दरवाजे बन्द कर दिए थे। गीताने उनको आत्मिक उन्नतिका मार्ग बतलाया। लेकिन भगवद्गीताकी भाषा संस्कृत है, जो बहुजन समाजकी समझमें आनेकी दृष्टिसे कठिन थी। ज्ञानेश्वरने अपनी टीकामें लिखा है कि वैसे तो वेद बहुत सम्पन्न हैं, लेकिन उनके जैसा कृपण भी दूसरा कोई नहीं। क्योंकि वे त्रैवर्णिकोंको ही श्रुतिगोचर है, उन्होंने शूद्रोंको वञ्चित किया है। शूद्रोंके लिए भी गीताधर्म अत्यन्त उपयुक्त होनेके कारण स्वयं ज्ञानेश्वरने उसे स्वीकार किया और उस कालके धार्मिक अधिकारसे वञ्चित करोड़ों स्त्रियों और शूद्रोंको उसका उपदेश दिया।

आध्यात्मिक लोकसत्ताका उदय :

ज्ञानदेवके समय पण्ढरपुरमें नामदेव नामक एक बालभक्त प्रसिद्ध हुए थे। नामदेव सगुण-उपासनाके प्रतीक थे। नामदेव जातिके दर्जी थे। लेकिन पण्ढरपुरके विट्ठल या विठोबाके भक्तकी जाति एक ही होती है। पण्ढरपुर महाराष्ट्रीय बहुजन-समाजका एक प्रसिद्ध क्षेत्र है। वहाँके नामदेव, नामभक्तिके देवता थे और आळन्दी नेवासेके ज्ञानदेव 'ज्ञान' के देवता थे। बिना भक्तिके ज्ञान अधूरा रहता है और बिना ज्ञानकी भक्ति अन्धी बन जाती है। ज्ञान और भक्तिका सामञ्जस्य ही मानवका अध्यात्मजीवन परिपूर्ण करता है। पण्ढरपुरमें ज्ञानदेव और नामदेवकी जो भेंट हुई थी, उसका अर्थ इस दृष्टिसे बहुत महत्वपूर्ण है। नामदेवके सहवाससे ज्ञानदेव सगुणभक्तिसे परिचित हुए और ज्ञानदेवसे नामदेवकी भक्तिको ज्ञानका अधिष्ठान प्राप्त हुआ। दोनों सन्त उत्तर-भारतकी तीर्थयात्रा कर चुके थे। उन्होंने महाराष्ट्रके भक्तिमार्गका प्रचार उत्तर-भारतमें भी किया। बादके कालमे उत्तर भारतके अनेक सन्तोंने महाराष्ट्रके नामदेवसे स्फूर्ति प्राप्त की। सिक्खोके धर्मग्रन्थ 'ग्रन्थसाहब'में नामदेवके अनेक मराठी पद आज भी मिलते है। महाराष्ट्रके विट्ठल या विठोबाकी प्रसिद्धि सारे भारतमें हुई। श्री चैतन्यदेव अपनी यात्राके सिलसिलेमें महाराष्ट्रमें भी आए थे। उन्होंने श्री विट्ठलपर एक सुन्दर स्तोत्र संस्कृत भाषामें रचा है। श्री विट्ठलकी सभी लोगोंने समान रूपसे पूजा की। उनकी पूजामें न तो जातिका बन्धन रहा और न वर्णोकी महत्ताही रही। ज्ञानेश्वर और नामदेवके समयमें मानो आध्यात्मिक क्षेत्रमे लोकशाही (जनतन्त्र) शुरू हो गई। ज्ञानदेवके उपदेशसे आध्यात्मिक क्षेत्रमें सब वर्णोका समान अधिकार मान लिया गया। त्रैवर्णिकोंकी ही भाँति स्त्री, शूद्र और पापी भी यदि अन्तःकरणपूर्वक ईश्वरकी भक्ति करें, तो मोक्षाधिकारी बन सकते है।

या लागी पापयोनी हि अर्जुना। का वैश्य शूद्र अंगना।
मातें मजतां सदना। माझिया येतो॥

[ज्ञानेश्वरी ९. ४७४]

भक्तिके क्षेत्रमें जाति, कुलका विचार ही नहीं रह गया। कोई भी किसी भी जातिका हो, और उच्च या नीच किसी भी कुलमें क्यों न जन्मा हो, उसे भक्ति करनेका अधिकार प्राप्त हुआ।

इसका परिणाम यह हुआ कि इस कालमें प्रत्येक जातिमें सन्त हुए। विट्ठल-भक्त नामदेव जातिके दर्जी थे। दासी जनाबाई एक अद्वितीय सन्त कवयित्री हो गई। ज्ञानेश्वरके सम्प्रदायमें अनेक जातियोके सन्त एकत्रित हुए। उनमे नरहरी सुनार, सेना ताई, गोरा कुम्भार, सावता माली और बंका, चोखा महार (ढेड) प्रसिद्ध है। इन सभीके अभंग (मराठीका एक विशेष छन्दवृत्त) भक्तिरससे परिपूर्ण हैं। अनेकोंने अपनी जातिहीनताका उल्लेख किया है। सेना नाई कहता है—हे पाण्डुरंग (विट्ठल) मै जातिका हीन हूँ। आप मेरे अभिमानकी रक्षा करें। (मी तो आहे याति हीन।

माझा राखा अभिमान।) चोखा महार, उसकी स्त्री सोयरा, बंका महार, मागु महारनी, चोखाका पुत्र कर्ममेळा आदि अस्पृश्य सन्तोंकी वाणीमें युग-युगकी करुण पुकार है। उसमें दयनीय स्थितिका करुणापूर्ण चित्रण है। अत्यन्त विनीत होकर उन्होंने आत्मनिवेदन किया है। चोखा महारके अभंगोंसे अस्पृश्य लोगोंकी दशाका चित्र पाठकके सामने आ जाता है। एक करुणापूर्ण अभंग देखिए।

चोखा महार कहता है :—

जोहार मायबाप जोहार। तुमच्या महाराचा मी महार॥
बहु भुकेला जाहलों। तुमच्या उष्ठ्यासाठीं आलो॥
बहु केली आस। तुमच्या दासाचा मी दास॥
चोखा म्हणे पाटी। आणली तुमच्या उष्ट्यासाठीं॥

[मैं दासोंका दास हूँ, अछूतोंसे भी अछूत हूँ, जूठा खाना मेरा धर्म है, मैं आपके दरवाजेपर खड़ा रहनेवाला दास हूँ।]

इस प्रकार ज्ञानेश्वरके साथ अनेक हीन जातीय सन्त एकत्र होकर विट्ठल भक्तिमें मस्त हो गए। विट्ठल सम्प्रदाय महाराष्ट्रमें बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसीका दूसरा नाम भागवत सम्प्रदाय या वारकरी पन्थ है। प्रत्येक पक्षकी एकादशीको लोग पण्ढरपुर जाने लगे और विट्ठलका दर्शनकर अपनेको धन्य मानने लगे। कम-से-कम आषाढी और कार्तिकी एकादशीको "वारी" या पारी करना आवश्यक माना गया। इस कारणसे सब विट्ठलभक्त "वारकरी" बने और उनका सम्प्रदाय "वारकरी" नामसे प्रसिद्ध हुआ। बंगालमें चैतन्य-सम्प्रदायमें जो महत्व भजनको मिला, वही मराठी वारकरी सम्प्रदायमें भी "रामकृष्ण हरी" और "विट्ठल, विट्ठल" नामको प्राप्त हुआ। "विट्ठल, विट्ठल" और "रामकृष्ण हरि" की धुनसे सारा महाराष्ट्र गुञ्जरित हो उठा। मराठी साहित्यके इतिहासमें इस कालको 'सुवर्णयुग' मानते है।

ज्ञानेश्वरकी ज्ञानदेवीके आधारपर ही वारकरी पन्थकी इमारत अविचल स्वरूपमें खड़ी हुई। मराठी भागवत सम्प्रदायका प्रमुख ग्रन्थ "ज्ञानेश्वरी" है। ज्ञानदेवके अनेक अभंग भी प्रसिद्ध है। चांगदेव जैसे योगी सम्राटको उपदेश देनेवाला ज्ञानदेवका "चांगदेव पासष्टी" ग्रन्थ भी उल्लेखनीय है। ज्ञानदेवकी ज्ञानदेवी भगवद्गीतापर टीका है। उसमें स्वतन्त्र तत्वज्ञानका दर्शन नहीं है। ज्ञानदेवकी स्वतन्त्र प्रतिभा "अमृतानुभव" ग्रन्थमे प्रकट हुई। श्री गुरु निवृत्तिनाथकी कृपासे उन्होंने यह ग्रन्थ लिखा और मराठीको तत्वज्ञानका एक अमूल्य रत्न प्रदान किया। इसमें काव्य और तत्वज्ञानका अनूठा सामञ्जस्य है। "अमृतानुभव" ग्रन्थमें स्वानुभवके जो विचार आए है, वे मराठीके वाग्रत्नभंडारको समृद्ध करनेवाले माने जाते है। "अमृतानुभव" लिखनेके बाद ज्ञानदेव मानों कृतकृत्य हो गए। उनका अवतार-कार्य पूरा हो चुका। अपनी आयुके २१ वर्षमें ही उन्होंने सजीव समाधि ले ली। उनके बाद निवृत्तिनाथ, सोपानदेव और मुक्ताबाई भी शान्त हो गए। ज्ञानदेवकी

बहन मुक्ताबाई एक श्रेष्ठ कवयित्री थीं। ज्ञानेश्वरकी अवतार-समाप्ति सन १२९६ में हुई। उनके साथ महाराष्ट्रका सारा वैभव और ऐश्वर्य भी चला गया। केवल बीस वर्षोंकी अवधिमें महाराष्ट्रका स्वातन्त्र्य सूर्य अस्त हो गया। देवगिरिके यादवों-का राज्य नष्ट कर दिया गया और मुसलमानोंका आधिपत्य शुरू हुआ। दक्षिणकी ओर उनके आक्रमण बढ़ने लगे। मराठी साहित्यपर भी इन घटनाओंका परिणाम निश्चित रूपसे हुआ।

दत्तसम्प्रदाय :

हिन्दूधर्म और हिन्दूसंस्कृति नाममात्र रह गई। मुसलमानोंके अत्याचारोंसे मन्दिर नष्ट हो गये। मूर्तियाँ तोड़ डाली गई। लूटमारका साम्राज्य फैल रहा था। एक हाथमें कुरान और दूसरे हाथमें खड्ग लेकर आगे बढ़ना और अपने धर्मका प्रसार करना ही उनका ध्येय था। उनके आक्रमणसे जनताके जीवन-सागरमें उथल-पुथल मच गई। बहमनी सुलतान अत्यन्त क्रूर थे और जनताको जोर-जुल्मसे मुसलमान बनाते थे। मुसलमान शासकोंके द्वारा उपस्थित सामाजिक और धार्मिक संकटके समय मराठी सन्तोंने महाराष्ट्र-जनताको बड़ा सहारा दिया। ज्ञानेश्वरके पश्चात् नामदेव पचास वर्ष तक जीवित थे और चोखा महार बयालीस वर्ष तक। फिर कान्होपात्रा, बहिरापिसा, नृसिंह सरस्वती, भानुदास, मुंतोजी ब्राह्मण, जनार्दन स्वामी, दासोपन्त आदि प्रमुख सन्त पैदा हुए। धीरे-धीरे यावनी सत्ता भी स्थिर हो गई। हिन्दू और मुसलमान धर्मोंमें सांस्कृतिक लेन-देन भी शुरू हुआ। इस कालके कितने ही मराठी सन्त यवनोंकी सेवाको बुरा नहीं मानते थे। इसी कालमें श्री विट्ठलके साथ एक दूसरा उपास्य देवता मराठी समाजको मिला। श्री दत्तात्रेयकी उपासना महाराष्ट्रमें शुरू हो गई। दत्तात्रेयके स्वरूपमें और उनके सम्प्रदायमें हिन्दू-मुसलमानके धर्मविचारोंका उत्कृष्ट सामञ्जस्य हमें मिलता है। जनार्दनस्वामी और एकनाथको दत्तात्रेय दर्शन देते थे और वह भी मुसलमान फकीरके वेषमें। हिंदू सन्तोंके समान फकीरोंकी भी पूजा होने लगी। जितने उत्साहसे लोग हिंदू देवताओंकी तीर्थयात्राके लिए जाते थे, उतने ही उत्साहसे मुसलमान पीरोंके दर्शनार्थ भी जाते थे। जनार्दनस्वामी दत्त-सम्प्रदायके महान् सत्पुरुष थे, उनको दत्त भगवानके बार-बार दर्शन होते थे। वे यवन बादशाहकी नौकरीमें थे और उनके विश्वासपात्र भी। उनके प्रसिद्ध शिष्य सन्त एकनाथ हुए।

एकनाथ (सन् १५३२) : एकनाथजीका जन्म महाराष्ट्रके पुण्यक्षेत्र पैठणमें सन १५३२ में एक आध्यात्मिक और आधिभौतिक दृष्टिसे सम्पन्न कुलमें हुआ। उनके पूर्वजोंमें भानुदास (१४७८–१५१३) एक श्रेष्ठ विट्ठलभक्त थे। भानुदासके पुत्र चक्रपाणि, चक्रपाणिके सूर्यनारायण और सूर्यनारायणके पुत्र एकनाथ (१५४८–१५९९) बारह वर्षकी आयुमें एकनाथ सद्गुरुकी खोजमें घरसे निकले और पैठणके पास

देवगिरिमे जनार्दन स्वामीकी शरणमें जा पहुँचे। उनपर गुरुकृपा हुई, और उन्हें दत्तात्रेयका वरप्रसाद मिला। अपने गुरुके साथ तीर्थयात्रा करते समय एकनाथने नासिक क्षेत्रमें गुरुकी आज्ञासे चतुःश्लोकी भागवतपर मराठी टीका लिखी। तीर्थ-यात्राके बाद वे पैठणमें स्थिर होकर धर्मप्रसार करने लगे। सन १५७० से ७३ तक तीन वर्ष वे वाराणसीमे रहे और वहाँ उन्होने भागवतके एकादश स्कन्धकी अपनी टीका समाप्त की। एकनाथका दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है, ज्ञानेश्वरी संशोधन। मुसलमानी आक्रमणसे ज्ञानदेवका भागवत धर्म और ज्ञानेश्वरीका प्रचार लुप्तप्राय हो गया था। ज्ञानदेवकी दैवी प्रेरणासे एकनाथने ज्ञानेश्वरीकी आवृत्ति सशोधित की और विट्ठलभक्तिका प्रसार पुनः शुरू किया। जैसे ज्ञानदेवने अपनी दृष्टि नाथ पन्थसे भागवत धर्मकी ओर घुमाई थी, उसी प्रकार दत्त सम्प्रदायके एकनाथ भी भागवतधर्मी बन गये। श्रीकृष्ण चरित्रका गायन एकनाथने अपने 'भागवत' ग्रन्थमे किया और रामचरित्र गानेके लिये उन्होंने भावार्थ-रामायण नामक एक बृहद् ग्रन्थकी रचना की। 'रुक्मिणीस्वयम्वर', 'आनन्दलहरी', 'स्वात्मसुख', 'शुकाष्टक' आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ है। ज्ञानेश्वरके पश्चात् दो-ढाई सौ वर्षोमें महाराष्ट्रमें अनेक सन्तपुरुष हुए, परन्तु उनमे एकनाथ अप्रतिम हैं।

एकनाथने सामाजिक हितकी दृष्टिसे जो कार्य किया उसका असाधारण महत्व है। "भक्तिके क्षेत्रमे जाति-पाँति नही, सब समान है।" एकनाथका भी यही कहना था। लेकिन वे एक कदम और आगे बढ़े। उन्होंने "सर्वाभूतीं भगवद्-भाव" का तत्व सामाजिक व्यवहारमे भी स्थापित किया। जो अन्त्यज है, अस्पृश्य है, दलित-पीडित है---उनके लिए भक्तिके क्षेत्रमे समानता तो है ही, लेकिन सामाजिक व्यवहारमें भी उन्हें समान दृष्टिसे देखा जाना चाहिए---इस दृष्टिसे एकनाथके आचार-विचार उस कालमे आश्चर्यजनक थे। एक-दो प्रसंग देखिए--- एक महार (ढेड़) का बालक अपनी माताके पीछे-पीछे धूपमे भटकते हुए गोदावरीके किनारे चला आया। उसके पैर जलने लगे और वह रोने लगा। यह देखकर एकनाथने उसे उठा लिया, उसकी नाक साफ की और उसे गोदमें लेकर महारोंकी बस्तीमें जाकर, उसके माता-पिताके यहाँ पहुँचा दिया। एक समय अपने पिताके श्राद्धके लिए तैयार किया हुआ भोजन उन्होंने अस्पृश्य लोगोको दे दिया। ईश्वरभक्त राणू महारकी विनती मानकर उसके यहाँ वे भोजन करने चले गये थे। अपने पिता एकनाथके इस 'अनाचार' को देखकर उनके पुत्र हरिपण्डित क्रुद्ध होकर काशी चले गये थे। एकनाथ न केवल सन्तपुरुष थे, वरन् वे एक महान् समाज सुधारक भी थे।

एकनाथकी दृष्टि वास्तवमें जनताकी ओर थी। हरएक आदमी अपना-अपना कार्य करते-करते ईश्वरभक्ति भी करे, इस दृष्टिसे एकनाथने अनेक पद लिखे है। एकनाथ प्रपञ्चके साथ-साथ परमार्थ करनेवालोके लिये आदर्श थे। उनका कहना था कि संसार ही परमेश्वरका फूला हुआ सौन्दर्य है। उस ईश्वरकी प्राप्तिके लिए

घर छोड़नेकी आवश्यकता नहीं है। एकनाथ स्वयं आदर्श गृहस्थ सन्त थे। अपने सजीव आदर्शसे उन्होंने दूसरोंको भी भक्ति-ज्ञानका मार्ग बतलाया। भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंमें काम करनेवाले ब्राह्मण, महार, मांग (मातंग, चंडाल), जागल्या (जागकर पहरा देनेवाला महार), गारुड़ी (साँपका खेल दिखानेवाला), सन्यासी, वारकरी, मानभाव (महानुभाव पन्थका), जोगी, जंगम, फकीर आदिपर सैकड़ों कविताएँ उन्होंने लिखी है। इनको मराठीमें "भारुड" कहते हैं। इन भारुड़ोंमें भिन्न-भिन्न पन्थोंके दोष कभी सरलतासे, कभी उपहाससे, कभी वक्रोक्तिसे और कभी व्याज-स्तुतिसे बतलाये गए हैं और रूपकोंकी योजना करके सबकी विट्ठलसे एकरूपता दिखानेका प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार एकनाथने 'भारुड़' के पद लिखकर आबाल-वृद्ध जनतामें अध्यात्म, सत्यधर्म और सदाचारका प्रसार किया है। इस्लामी आक्रमणके कालमे गिरती हुई हिन्दू संस्कृतिका फिरसे उद्धार करनेवाले सन्त एकनाथ एक महापुरुष थे। एकनाथके कालमे रामा जनार्दन, जनी जनार्दन, विठा रेणुकानन्द और दासोपन्त प्रमुख सन्त हुए। दासोपन्तका "गीतार्णव" मराठीका सबसे बड़ा ग्रन्थ है। कहते हैं कि उन्होंने दो-तीन लाख कविताएँ लिखी है। मृत्युञ्जय, शिवकल्याण, त्र्यंबकराज, रमावल्लभदास, कृष्णदास मुद्गल, सरस्वती गगाधर आदि कवियोंने भी इसी कालमें मराठी साहित्यकी शोभा बढ़ाई है। एकनाथकी कन्याके पुत्र मुक्तेश्वर (१६०९–१६६०) मराठीमें कथाकाव्य लेखकके रूपमें सर्वप्रसिद्ध हैं। पाण्डित्य और कवित्वका सहज-सुन्दर मेल उनके काव्यमें दीख पड़ता है। मुक्तेश्वरका 'महाभारत' मराठी भाषाका एक महान ग्रन्थ है। इसके सिवा 'शुकरम्भा सम्वाद', 'शतमुखरावण-वध', 'एकनाथ चरित्र', 'गजेन्द्रमोक्ष', 'हनुमन्ताख्यान' आदि उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

तुकाराम (१६०८–१६५०) : एकनाथके पश्चात् महाराष्ट्रमें दो विख्यात सन्तपुरुष हुए—एक तुकाराम और दूसरे रामदास। दोनोंका जन्म सन् १६०८ में हुआ था। पूनाके पास देहू गाँवमें शूद्र कुलमें तुकारामका जन्म हुआ। उन्होंने स्वय कहा है कि मै शूद्र हूँ, लेकिन व्यवसाय मैंने वैश्योंका अपनाया है। तुकारामकी सम्पूर्ण आयु देहू और उसके आसपास ही व्यतीत हुई। तुकारामकी पहली पत्नी रोगसे पीड़ित थी और दूसरी धनिक बापकी बेटी होनेके कारण स्वभावसे अत्यन्त तामसी थी। तुकारामका गृहस्थ जीवन, इस प्रकार प्रतिकूलतासे ही शुरू हुआ। चार वर्षोंके बाद महाराष्ट्रमें बड़ा भारी अकाल पड़ा। लोग भूखों मरने लगे। तुकारामका धन्धा बन्द हो गया और खानेको न मिलनेके कारण उनकी पहली पत्नीका देहान्त हो गया। उसके बाद उनका नवजात पुत्र भी चल बसा। बड़ा भाई घर द्वार छोड़कर चला गया। इन सब आपत्तियोंके कारण तुकारामका मन उचट गया और वे घर-गृहस्थीसे उदासीनसे

रहने लगे। तुकारामकी दुकान बन्द हो गई। तुकाराम व्यथित अन्तःकरणसे ईश्वर-चिन्तन करने लगे। देहूके पासके भण्डारा पर्वतपर वे प्रति दिन जाया करते और विश्व-चिन्तनमें लीन रहते। उनके घरमे परम्परासे विट्ठल भक्ति चली आई थी। उन्होंने सन्तोंके ग्रन्थोंका अभ्यास शुरू किया और ज्ञानेश्वरी तथा एकनाथी भागवतका बार-बार पारायण किया। सांसारिक झंझटोंसे दुखी, पीड़ित तुकाराम अब भक्ति-मार्गके पथिक बने। 'नित्य नया दीस जागृतिका' उनके मनमें उपस्थित हुआ। अन्तःकरण ईश्वर चिन्तनसे पवित्र और उच्च विचारोंसे परिपूर्ण हो गया। नामदेवने स्वप्नमे आकर तुकारामको कवित्व शक्ति प्रदान की और तभीसे तुकारामकी अभंग-वाणीको मराठीमे 'अभंग' हो रहनेकी योग्यता प्राप्त हो गई। कीर्तनके समय अब वे स्वरचित अभंगोंका गान किया करते थे। तुकारामके अभंग उनके हृदयके उद्‌गार है। उनके अन्तःकरणकी समस्त व्यथाएँ, भावनाएँ, ईश्वरके प्रति प्रेम और साक्षात्-कारकी उत्कण्ठा उनमे प्रतिबिम्बित है। भक्तिकी एक-एक भावना एक-एक अभंगके रूपमे परिणत हुई है। ईश्वर-भक्ति, सदाचार, परनारी, परद्रव्यके प्रति घृणा, स्वधर्म श्रद्धा, कर्मकाण्ड और बाह्याडम्बरका उपहास, क्षुद्र देवताओंकी उपासनाका विरोध, आदि भावों और सद्‌विचारों का बीजारोपण उनके कीर्तनोंमें होने लगा। ज्ञानेश्वरीका जो भावार्थ ऊपर अन्तरालमे उदित हो उठा था, उसे ही तुकारामने जनताके लिए अपने अभगोंके माध्यमसे धरातलपर प्रस्तुत कर दिया। महाराष्ट्रमें जनताके सबसे बड़े कवि तुकाराम ही हैं। प्रपञ्चमें फँसे हुए जीवोंका उद्धार उन्हें प्रपञ्चसे विमुख न करते हुए ही तुकारामके अभंगोंने किया है। संस्कृत वेदान्तवाणी तुकारामके मुँहसे प्राकृतका वेश लेकर सालंकृत हुई। इन्द्रायणीके किनारे रहनेवाले इस शूद्र सन्तने महाराष्ट्रको भक्तिमार्गका दीप दिखाया। स्वय सन्तुष्ट होकर उन्होंने दूसरोको भी तृप्त किया। वारकरी सम्प्रदायके दो प्रमुख स्तम्भ है—एक ज्ञानेश्वर या ज्ञानदेव और दूसरे तुकाराम। 'ज्ञानोबा-तुकाराम' इस द्वन्द्व-समाससे महाराष्ट्र की संस्कृति प्रकट हो सकती है। आषाढ़ी और कार्तिकी एकादशीको लाखों वारकरी आज भी 'ज्ञानबा (या जानबा) तुकाराम' का जयघोष करते हुए पण्ढरपुर जाते है। महाराष्ट्रके भागवत सम्प्रदायका प्राचीन विद्यापीठ पण्ढरपुर है। पण्ढरपुरके विट्ठल ही ज्ञानदेव, एकनाथ और तुकारामके मुँहसे बोलते है—मराठी लोगोंकी आज भी यही धारणा है। तुकारामके अनन्तर भागवत सम्प्रदायमे उतना महत्वपूर्ण एक भी सन्त-कवि नही हुआ। तुकारामकी शिष्या बहिणाबाईने एक अभंगमे कहा है:—

संत कृपा झाली। इमारत फळां आली॥
ज्ञानदेवें रचिला पाया। बांधियलें देवालया॥
नामा तयाचा किंकर। तेणें केला हा विस्तार॥
जनार्दनीं एकनाथ। ध्वज उभारला भागवत॥
तुका झालासे कळस। भजन करा सावकाश॥

[भागवत् धर्मके मन्दिरकी नींव ज्ञानदेवने डाली, नामदेवने उसका विस्तार किया, मुसलमानोके आक्रमण-कालमे एकनाथने उसका पुनरुद्धार किया और तुकाराम उस मन्दिरपर कलश रूपमें सुशोभित हुए।]

रामदास (१६०८) : तुकारामके बाद वारकरी सम्प्रदायकी परम्परा काव्य-दृष्टिसे शिथिल हो गई। वारकरी परम्परा तो आज भी है, लेकिन ज्ञानदेव, तुकाराम-जैसे श्रेष्ठ युग-प्रवर्तक सन्त पुरुष उसमें उसके बाद उत्पन्न नहीं हुए। वारकरी सम्प्रदायकी जो तत्व परम्परा थी, उसमें लोग रामदासको नहीं मानते। समाज-उद्धारके लिए रामदासका कार्य महान् उपयोगी सिद्ध हुआ, लेकिन ज्ञानेश्वर-तुकारामके भक्तिमार्गमें रामदासी सम्प्रदायको किसी प्रकारका भी स्थान नहीं है। पर तात्विक दृष्टिसे देखा जाए तो यह स्पष्ट है कि वारकरी परम्पराकी ही शिक्षा रामदासने जनताको दी। विद्वानोंका कहना है कि रामदासके उपास्य भगवान श्री रामचन्द्र थे। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र और शक्तिशालिनी भवानीदेवीकी उपासना महाराष्ट्रमे रामदासने प्रवर्तित की। शक्ति और बुद्धिके देवता श्री हनुमानकी उपासनाका प्रसार भी रामदासने गाँव-गाँवमें किया। 'आसमानी' और 'सुलतानी' दोनों प्रकारके आक्रमणोंको रोकनेके लिए उन्होंने इन शक्तिशाली देवताओंकी उपासनाका आदर्श लोगोके सामने रखा। इसी कारणसे साम्प्रदायिकोंने रामदासको वारकरी पन्थसे अलग कर दिया है। स्वयं रामदास श्री रामचन्द्र और विट्ठलमे अभेद मानते है। मोक्ष मार्ग, संन्यास धर्म, निवृत्ति, वैराग्य और ससार-असारताका प्रतिपादन उन्होंने भी किया है। लेकिन विद्वानोंका एक पक्ष यह मानता है कि रामदास प्रवृत्तिमार्गी थे। उन्होंने प्रपञ्च-परमार्थका विवेचन वारकरी पन्थसे भिन्न पद्धतिसे किया है। रामदासके कालकी एक और घटना महत्वपूर्ण है। इसी समय स्वराज्य-संस्थापक श्री शिवाजी महाराजका कार्य शुरू हो रहा था। राज्य-स्थापनाके लिए जिस प्रवृत्तिमूलक धर्मकी आवश्यकता थी, उसकी प्रारम्भिक भूमिका रामदासने प्रस्तुत की। यह काल महाराष्ट्रका सौभाग्य काल था। इसी समय तुकाराम, रामदास और श्री शिवाजी इन तीन श्रेष्ठ पुरुषोंने अपना-अपना कार्य किया। उनमें भक्ति और शक्तिके प्रतीक थे रामदास। रामदासका चरित्र भी बहुत चमत्कारपूर्ण है।

राम-भक्त रामदासका जन्म सन् १६०८मे हुआ था। बारहवें वर्षमें उनके माता-पिताने उनका विवाह-सम्बन्ध निश्चित किया और उसी समय वे घरसे भाग गए। गोदावरीके किनारे रामदासने नाशिकमें बारह वर्षों तक उग्र तपस्या की। तपस्या समाप्त होनेके बाद उन्होंने उत्तर भारत और दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा की। रामदासने जन समुदायकी परिस्थिति आँखें खोलकर देखी। इस्लामके आक्रमणसे लोग पीड़ित थे, दारिद्रय, अज्ञानके दुःखसे जन समाज व्यथित था। इससे भी अधिक दुःख जनताको अन्न-

वस्त्रके अभावका था। इन परिस्थितिका वर्णन रामदासने अत्यन्त हृदयद्रावक रीतिसे किया है। 'खानेको बिलकुल नहीं मिलता, कारण फसल होती ही नहीं। खेतीमें अत्यन्त परिश्रम करनेके बाद भी दैन्यावस्था बनी रहती है। देशमे अन्धेर मचा हुआ है। कोई भी किसीको मार-पीट देता है। खेतीका अनाज अन्य लूट ले जाते है; इसलिए कुछ रहता नही। माल है तो व्यापारी नहीं, परिणामतः सब व्यापार बन्द है। चार हाथका कपड़ा भी पहननेको नही मिलता। एक दूसरेकी चोली और वस्त्र चुराकर भाग जाते है। पैसेके लिए लोग मारपीट करते हैं। नौकरी नहीं मिलती, रोटी भी नही मिलती।' इसी पार्श्व-भूमिपर रामदासका कार्य देखना है। सन् १६४४ के लगभग रामदास घर आए। उन्होंने अपनी माताका दर्शन किया और सातारा जिलेमें कृष्णा नदीके किनारे चाफळ गाँवमे अपने सम्प्रदायकी नींव डाली। इस सम्प्रदायका महत्वपूर्ण ग्रन्थ है—'दासबोध'। रामदासने अपने ग्रन्थमें प्रवृत्ति और निवृत्तिका यथोचित निरूपण किया है। इसके सिवा 'करुणाष्टकें', 'मनाचे श्लोक', 'आनन्दवनभुवन', 'परचक्र निरूपण' आदि कविताएँ भी रामदासने लिखी है।

रामदासके शिष्य-परिवारके जयरामस्वामी वडगाँवकर, रंगनाथस्वामी वडगाँवकर, केशवस्वामी आनन्दमूर्ति, रामदासके बड़े भाई श्रेष्ठी रामी रामदास, दिनकर गोसावी, वेणाबाई, गिरिधर, कल्याणस्वामी, भीमस्वामी, मेरुस्वामी, उद्धवसुत आदि प्रमुख कवियोंने अपने-अपने विषयोंपर काव्य रचनाएँ की हैं।

पण्डितोंकी आख्यानक कविता :

तुकाराम और रामदासके बाद मराठी साहित्यका एक दूसरा काल शुरू होता है। चक्रधर, मुकुन्दराज, ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम और रामदासने लोगोके लिए प्राकृत भाषामें परमार्थ-तत्वका निरूपण किया था। लेकिन तत्वज्ञान जैसा रुक्ष विषय सामान्य जनताके लिए बहुत ही क्लिष्ट होता है, इसीलिए इस प्रकारका तत्वज्ञान जिन महापुरुषोंके चरित्रमें मिलता है, उन श्रेष्ठ पुरुषोंका चरित्र-गान करनेकी परम्परा इस कालमें समृद्ध हुई। महानुभाव साहित्यमें भी 'रुक्मिणी स्वयवर', 'शिशुपाल वध' आदि कथा-काव्यकी रचना हुई थी। सन्त एकनाथने भी भागवत और रामायणकी कथाएँ मराठीमें बहुत विस्तारसे लिखी है। एकनाथके पौत्र मुक्तेश्वरने महाभारतका मराठीमें अनुवाद किया है। लेकिन इस प्रकारके आख्यानक काव्यको परम्परा समृद्ध हुई तुकाराम और रामदासके बाद ही। इस समय स्वराज्यका शासन शुरु हो गया था। विद्वत्ता और पाण्डित्यको आश्रय मिला। रामचन्द्र और श्रीकृष्णकी कथाएँ अनेक मराठी पण्डित कवियोंने लिखी है। मराठी काव्य संस्कृतनिष्ठ बनने लगा और फलस्वरूप काव्य-प्रवृत्तिमें दुर्बोधता आ गई। संस्कृत वृत्त, संस्कृत अलंकार-पद्धति, संस्कृत शब्द-रचना आदि सामग्रीके साथ मराठीकी

पाण्डित्यपूर्ण आख्यानक कविता स्वभावसे धीर गम्भीर और प्रौढ़ बन गई। सामान्य जनतासे उसका सम्बन्ध टूट गया और उसका मेल बढ़ा पण्डितोंके साथ। कवि प्रतिभा-निर्मित काव्यके नए रंग-ढंग मराठीमें अवतरित हुए। इस कालके कवि प्रकृतिसे प्रायः पण्डित थे, विद्वान थे, रसिक थे। उनका साध्य-हेतु काव्यकी रचना थी और साधनका स्वरूप परमार्थ-निरूपण या श्रेष्ठ पुरुषोंका चरित्र-गायन था। प्राचीन कालके ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि सन्त स्वभावतः सन्त थे और साधन-रूपमें कवि थे। पण्डित कालके कवि पहले कवि थे, बादमें सन्त। हिन्दी साहित्यके इतिहासमें जिस प्रकार सन्त साहित्यके बाद रीतिकाल आता है, उसी प्रकार मराठीमें भी सन्त-काव्यके बाद पण्डित-काव्यकी परम्परा आती है।केवल मनोरञ्जनके लिए हास्य-परिहास और शृंगार—वर्णन इस कालमें बहुत हुआ। वामन पण्डित, रघुनाथ पण्डित, विट्ठल, नागेश, मध्वमुनीश्वर, अमृतराय, महिपतीबोवा ताहराबादकर, श्रीधर, मोरोपन्त आदि अनेक पण्डित कवियोंने इस कालमें मराठी कविताकी शोभा बढ़ाई है। रामायण, भागवत और महाभारत इन राष्ट्रीय ग्रन्थोंकी समूची कथाएँ उन्होंने मराठीमें श्लोकबद्ध की है। बहुतोंने कौरव-पाण्डवोंकी चरित्र-गाथा गाई है। कितने ही कवियोंने सीता स्वयम्वर, रुक्मिणी स्वयम्वर गाया है।

वामन पण्डित (१६०८–१६९५) : ये हृदयसे कवि और वृत्तिसे प्रकाण्ड पण्डित थे। 'निगमसार', 'कर्मतत्व', 'चित्सुधा', 'सिद्धान्तविजय', 'अपरोक्षानुभूति' आदि उनकी आध्यात्मिक कविताएँ बहुत ही प्रसिद्ध हैं। वामन पण्डितकी भगवद्गीताकी टीका 'यथार्थदीपिका' उनका सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके सिवा उनकी 'भामा विलास', 'राधा विलास', 'राधाभुजंग', 'हरिविलास', 'रासक्रीडा', 'रुक्मिणी विलास', 'पञ्चसुधा', 'शुक-रम्भा सम्वाद', 'बालक्रीड़ा' आदि भागवतकी कथाएँ बहुत ही रसपूर्ण और प्रसादयुक्त होनेके कारण लोकप्रिय है।

रघुनाथ पण्डितका 'नलदमयन्तीस्वयम्वराख्यान' मराठीमें एक सुन्दर और अनूठी काव्य कथा है। उनकी 'रामदास-वर्णन' और 'गजेन्द्र मोक्ष' कथाएँ भी उल्लेखनीय है। आनन्दतनयका 'सीता स्वयम्वर' और सामराजका 'रुक्मिणी स्वयम्वर' मराठीके स्वयम्वर आख्यानोंमें बहुत प्रसिद्ध है। नागेशका 'सीता स्वयम्वर' और 'चन्द्रावली वर्णन' रसिकोंके प्रिय ग्रन्थ है। विट्ठल बीडकरने 'सीता स्वयम्वर', 'द्रौपदी वस्त्रहरण', 'पाञ्चाली स्तवन', 'विल्हण चरित्र', 'रसमञ्जरी' आदि अनेक आख्यानक कविताएँ लिखी है।

इस पण्डित-काव्यके कालमें जनताकी ओर दृष्टि रखकर सुलभ काव्य रचना करनेवाले दो कवि प्रसिद्ध है—एक है श्रीधर नाझरेकर और दूसरे है महिपतीबोवा ताहराबादकर। श्रीधरने 'हरिविजय', 'रामविजय', 'पाण्डव प्रताप', 'शिव-लीलामृत', 'पांडुरंग माहात्म्य', 'व्यंकटेश माहात्म्य' आदि ग्रन्थ लिखकर सामान्य मराठी जनताकी अपार सेवा की है। श्रीधरकी काव्यरचना रसमय और सुबोध होनेके कारण आज भी उनके ग्रन्थ घर-घरमें पढ़े जाते हैं। महाराष्ट्रके सांस्कृतिक

विकासमें श्रीधर कविने बहुत ही महत्वपूर्ण योग दिया है। इसी प्रकार महिपती-बोवाने 'भक्तिविजय', 'कथासारामृत', 'पांडुरंग माहात्म्य', 'सन्त लीलामृत', 'भक्त लीलामृत' आदि चरित्र ग्रन्थ लिखकर मराठी जनताके हृदयपर अपना अधिकार जमा लिया है। इस कालमें कृष्ण दयार्णव, निरञ्जन माधव, दासोदिगम्बर आदि आख्यानक कवियोंने काव्य रचना की है। मध्वमुनि और अमृतरायने मराठीमें रसीले पदोंकी भाव-मधुर रचना करके उसके पद-रत्न भण्डारको समृद्ध किया है। अमृतरायकी काव्य-रचना 'कटाव' नामसे प्रसिद्ध है। 'कटाव' पढ़ते-पढ़ते रेलगाड़ीके प्रवासकी अनुभूति होने लगती है।

मोरोपन्त (१७२९–१७९४): ये पण्डित कालके सबसे बड़े कवि है। मोरोपन्त बारामतीके सरदार बाबूजी नाईकके आश्रित थे। मोरोपन्त पहलेसे ही राम-भक्त और कवि हृदय थे। अलंकार शास्त्र, छन्द शास्त्र, कोश साहित्य, वेदान्त-तत्वज्ञान, ज्योतिष, पुराण, धर्मशास्त्र आदि विषयोंका अध्ययन मोरोपन्तने अच्छी तरहसे किया था। उनकी 'प्रह्लादविजय', 'मदालसा चरित्र', 'हरिश्चन्द्राख्यान', 'देवीमाहात्म्य', 'सप्तशती', विनायक माहात्म्य', 'सीतागीत', 'सावित्रीगीत', 'रुक्मिणीगीत' आदि कथाएँ बहुत ही प्रसिद्ध है। 'श्लोक केकावलि' मराठीके स्तोत्र काव्यका एक उत्कृष्ट उदाहरण है। रामभक्त मोरोपन्तने श्रीरामचन्द्रकी कथा अनेक बार लिखी है। 'मन्त्र रामायण', 'परन्तु रामायण', 'निरोष्ठ रामायण', 'दाम रामायण' आदि रामायणोंमें मोरोपन्तकी चमत्कारपूर्ण प्रतिभाका विलास देखकर रसिक लोग झूम उठते है। भागवतका भी अनुवाद मोरोपन्तने किया है। मोरोपन्तकी कविता 'आर्या' वृत्तमें है। अभी तक प्रकाशित हुई कविताओंकी सख्या ६०,००० है। इसमें महाभारतकी १७,००० 'आर्याएँ' हैं। मोरोपन्तका मराठी महाभारत कविकी प्रतिभा-शक्तिका अनुपम निदर्शन है।

शाहिरोंकी खास मराठी कविता :

प्राचीन मराठी साहित्यकी सन्त-परम्परा और पण्डित-परम्पराकी पार्श्वभूमि संस्कृत भाषा और साहित्यकी थी। तत्वज्ञान, धर्मग्रन्थ, देवी-देवता आदि विषय प्राचीन मराठीने संस्कृत भाषासे लिए थे। इस काव्यके विषय एक दृष्टिसे अलौकिक थे। समकालीन घटनाओंका वर्णन प्राचीन कवियोंने नहीं किया था। उनके लिए नरकी स्तुति करना असम्भव था। मराठोंने पण्डित-काव्यके कालमें सारे हिन्दुस्तानमें जो पराक्रम दिखाया था, जो विजयें प्राप्त की थीं, जो साम्राज्यविस्तार किया था, जो युद्ध किये थे, उनका तनिक भी वर्णन प्राचीन मराठी काव्यमें नही मिलता। सन्त तत्वचिन्तक बने और पण्डित-कवि काव्यरसमें डूबे। पण्डित-काव्ययुगके अन्तमें दूसरी मराठी काव्यधारा सजीव हुई—वह है मराठी शाहिरोंकी। मराठी शाहिरोंने मराठोके पराक्रमका वर्णन किया। उन्होंने लौकिक विषयोंपर काव्य-

रचना की। उन्होंने संस्कृतसे सम्बन्ध तोड़कर असली देशी मराठीमें शूरोंकी वीर-कथाएँ गाई है। मराठी वृत्त, खास मराठी भाषा, मराठी शब्द-रचना, मराठी भावना, मराठी अनुभूति, मराठी आकांक्षाएँ शाहिरी काव्यमें प्रकट हुई। मराठी मन और मराठी हृदयका परिचय इसी काव्यसे हो सकता है। मराठी लोगोंका शौर्य और मराठी लोगोंका शृंगार इसी काव्यमें मिलता है। शौर्यकी कथा 'पवाड़ा' में और शृंगारकी कहानी 'लावणी' में मिल सकती है। मराठी साहित्यका यह 'वीरगाथा-काल' प्राचीन साहित्यके इतिहासके अन्तमें आता है। सन् १६५९ में अगीनदास नामक शाहिरने अफझलखानके वधका पवाड़ा गाया और उसमे श्री शिवाजीकी बहादुरीका वर्णन किया। इसी परम्परामे अनन्त फन्दी,परशुराम,रामजोशी, प्रभाकर, सगनभाऊ, होनाजी बाळा आदि प्रमुख शाहिर कवियोंने मराठी काव्यको समृद्ध किया है। प्राचीन मराठी सन्तोंकी कविता तत्वचिन्तनमें मग्न थी, पण्डितोंकी कविता रामकृष्णके चरित्र-गायनसे धन्य हो गई, लेकिन उन्नीसवीं सदीके अन्तिम भागमें मराठी कविता-रमणी एक तरफ 'झनक झनक' कर नृत्य करती हुई प्रेम-वर्णन करने लगी और दूसरी तरफ खड्गके पराक्रमका बखान करने लगी। मराठी कविताका भविष्यकाल उज्ज्वल बन रहा था। इसी समय सन् १८१८ और १८४८ में महाराष्ट्रका स्वातन्त्र्य-सूर्य अस्तङ्गत हुआ। सारा वैभव नष्ट हो गया। अँग्रेजोंकी राजनीति प्रबल हो उठी और देशकी सारी शासन-व्यवस्था अँग्रेज सरकारके हाथोंमें चली गई। प्राचीन मराठी साहित्यकी दृष्टिसे यह अवनतिका प्रारम्भ था, लेकिन इसी अवनतिमेसे आधुनिक मराठी साहित्यका पुनर्जन्म हुआ। आधुनिक साहित्यका परिचय करा देनेके पूर्व इन सात सौ वर्षोंके साहित्यकी कुछ प्रमुख विशेषताओंको संक्षेपमे यहाँ देना अनुचित नही होगा।

प्राचीन साहित्यकी प्रमुख विशेषताएँ :

(१) प्राचीन मराठी साहित्यकी दो प्रमुख धाराएँ है--एक सन्त-साहित्यकी, जिसमे ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकारामका परमार्थ-निरूपण और लोकोद्धारका कार्य आता है; दूसरी धारा है---पण्डित कवियोंकी आख्यान-परम्परा। दोनोंका विषय तत्वनिरूपणके साथ रामकृष्ण आदि अवतारी पुरुषोंका कथा-निवेदन भी है।

(२) प्राचीन काव्य प्रायः अभंग और ओवी वृत्तोंमे है। मराठी भाषाके ये दो खास वृत्त-प्रकार है। पण्डित कवियोंकी रचनाएँ संस्कृत अक्षर-गण वृत्तोंमे है।

(३) मराठी सन्त-साहित्यका प्रायः धर्मपन्थोके आश्रयसे निर्माण हुआ है। मराठी साहित्यके प्रारम्भ-कालमे महानुभाव-सम्प्रदाय प्रमुख है। बादके कालमे नाथ-सम्प्रदाय, भागवत या वारकरी-सम्प्रदाय,दत्त-सम्प्रदाय, रामदासी सम्प्रदाय आदि प्रमुख धर्मपन्थ या भक्तिपन्थ बने और उनके ही आश्रयसे सन्त-साहित्यकी रचना हुई।

(४) पण्ढरपुरके श्री विट्ठल या विठोबा महाराष्ट्रके एकमेव प्रसिद्ध देवता है। वही मराठी मानसके विष्णु है, कृष्ण है, रामचन्द्र है।

(५) मराठी सन्तोको और पण्डितोको किसी प्रकारके राज्याश्रयकी आवश्यकता नही थी। रामदास और तुकारामने शिवाजीका राज्याश्रय नही माना। मोरोपन्त आश्रित थे, लेकिन उन्होने अपने स्वामीकी स्तुति कभी नही की। चारण-काल, या भाट-काल मराठी साहित्यमे नही है।

(६) प्रवृत्ति मूलक और निवृत्ति मूलक दोनो प्रकारके साहित्य मराठीमे है। किन्तु प्रवृत्ति मूलक साहित्यकी अपेक्षा निवृत्ति मूलक साहित्य अधिक है।

(७) मुसलमानोके आक्रमण-कालमे सन्तोने ही मराठी जनताकी रक्षा की है। उन्होने ही उसकी सहायता की और उसके आँसू पोछे।

(आ) आधुनिक मराठी साहित्य :

प्रारम्भिक भाषान्तर युग :

उन्नीसवी सदीके प्रारम्भमे ही मराठी साहित्यकी प्राचीन परम्परा टूट गई। स्वतन्त्रताके साथ पुराना वैभव भी लुप्त हो गया। जीवनके सभी स्तरोपर अँग्रेजो और अँग्रेजीका प्रभाव पड रहा था। अँग्रेजी भाषा, अँग्रेजी साहित्य, अँग्रेजी रहन-सहन, अँग्रेजी राज्य-व्यवस्था—एकदम सारा वातावरण अँग्रेजीमय हो गया। मराठीके शास्त्री और पण्डित लोग अँग्रेजी ग्रन्थोकी ओर आकृष्ट हुए और उनके अनुवाद करनेमे लग गए। सन् १८१० से १८७३ तकका मराठी साहित्य प्राय बालोपयोगी है। ईसाई मिशनरीकी सहायतासे मराठी साहित्यके कदम आगे बढे। सन् १८०५ मे कलकत्ताके पासके श्रीरामपुरमे डॉ कॅरेने नागपुरके वैद्यनाथ शास्त्रीकी मददसे मराठीका एक व्याकरण मुद्रित किया। १८१० मे 'अँग्रेजी-मराठी शब्दकोष' बना। सन् १८२२ मे 'बॉम्बे नेटिव्ह एज्युकेशन सोसायटी' की स्थापना हुई और उसके प्रयत्नसे मराठीके प्रारम्भ-कालके गद्यका विकास शालोपयोगी पुस्तकोके रूपमे शुरू हुआ। साथ ही समाचार पत्र और मासिक पत्रोका कार्य भी शुरू हुआ। 'दर्पण' (१८३२) मराठीका पहला समाचारपत्र है। आगे चलकर 'प्रभाकर', 'ज्ञानप्रकाश', 'ज्ञानोदय' आदि समाचारपत्रोने मराठी पत्रकारिताका प्रारम्भ किया। जगन्नाथ शंकरशेट, सदाशिव काशिनाथ छत्रे, हरि केशव, बाळशास्त्री जाभेकर आदि लेखकोने मराठीके आधुनिक कालके गद्यकी नीव डाली। दादोबा पाडुरग मराठी व्याकरणके आद्य प्रवर्त्तक माने जाते है। कविवर मोरोपन्तकी 'केकावलि' पर उनकी 'यशोदा पाडुरगी' टीका भी महत्वपूर्ण है। हरि केशव श्रेष्ठ दर्जेके भाषान्तरकार थे। सिद्धपदार्थ विज्ञान, रसायनशास्त्र विषयक सम्वाद, यात्रिक क्रमण ('पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' का अनुवाद) आदि पुस्तके उन्होने लिखी है। परशुराम तात्या गोडबोलेका 'वृत्तदर्पण'

विद्यार्थियोंके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। उनके 'वेणीसंहार', 'उत्तर रामचरित', 'शाकुन्तल', 'मृच्छकटिक' आदि संस्कृत नाटकोंके अनुवाद भी रसपूर्ण है। गोपाळ हरि देशमुख तथा लोकहितवादी (१८२३–१८९२) इस कालके सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति है। नए विचारोंके प्रतिपादक, ज्ञान संग्राहक, और लोक सेवककी दृष्टिसे उनका कार्य असाधारण था। इसी कालमें दो कृष्ण शास्त्री प्रसिद्ध हुए; एक कृष्ण शास्त्री राजवाडे (१८१५–१९०१) और दूसरे कृष्णशास्त्री चिपळूणकर (१८२४–१८७८)। पहले कृष्णशास्त्रीने 'मुद्राराक्षस', 'मालतीमाधव', 'शाकुन्तल' आदि संस्कृत नाटकोंके अनुवाद किए। दूसरे कृष्णशास्त्री चिपळूणकर इस कालके एक मान्यवर रसिक पण्डित थे। पूना ट्रेनिंग कॉलेजके प्रिन्सिपल होते हुए भी उन्होंने मराठी गद्यकी अपूर्व सेवा की। 'विचार-लहरी' नामक उनका एक पाक्षिक पत्र था। 'अरबी भाषेतील सुरस व चमत्कारिक गोष्टी' (अरेबियन नाइट्स) उनकी एक प्रमुख अनुवाद कृति है। इसके अतिरिक्त 'विद्यामूलतत्व संग्रह', 'अर्थशास्त्र परिभाषा', 'साक्रेतिसाचे चरित्र', 'रासेलस' आदि अनेक ग्रन्थ उन्होंने लिखे है।

मराठी भाषाके शिवाजी :

विष्णुशास्त्री चिपळूणकर (१८५०–१८८२) ये उपरिनिर्दिष्ट कृष्णशास्त्रीके सुपुत्र थे। इन्होंने आधुनिक मराठी गद्यको प्रौढ रूप दिया। एक दृष्टिसे मराठी साहित्यके वे 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' थे। दोनोंका जन्म एक ही सालमें हुआ और दोनों लगभग बत्तीस वर्षोंतक ही जिए। दोनोंने अपनी मातृभाषामें स्वधर्म, स्वभाषा और स्वदेशके लिए महान कार्य किया है। विष्णुशास्त्रीने मराठी गद्य-साहित्यमें एक नए युगका प्रवर्तन किया। सन् १८७४ में उन्होंने अपनी 'निबन्धमाला' का प्रारम्भ किया। शास्त्रीजीकी निबन्धमाला अनेक मराठी साहित्यकारोंके लिए प्रेरक ग्रन्थ रही है। स्वराज्य और स्वतन्त्रताकी पहली प्रेरणा महाराष्ट्रको विष्णुशास्त्रीने दी। बाल गंगाधर तिलक, गोपाल गणेश आगरकर, हरि नारायण आपटे, नरसिंह चिन्तामण केळकर, शिवराम महादेव परांजपे, विश्वनाथ काशिनाथ राजवाड़े, लक्ष्मण रामचन्द्र पागारकर, वामन मल्हार जोशी, श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर आदिकी श्रेष्ठ परम्पराका निर्माण विष्णु-शास्त्रीकी 'निबन्धमाला' से हुआ। 'काव्येतिहास संग्रह', 'चित्रशाळा', 'किताबखाना', 'न्यूइन्ग्लिश स्कूल', 'आर्यभूषण प्रेस', 'केसरी और मराठा' ये है चिपळूणकरजीके जीवन्त स्मारक-चिह्न। विष्णुशास्त्रीके दीर्घ प्रयत्नसे ही मराठी भाषा सुदृढ और समृद्ध बनी। इसलिए आगरकरजीने उन्हें 'महाराष्ट्र वाणीका पति' कहकर गौरवपूर्ण उपाधि दी है। चिपळूणकरने भी स्वयं कहा है—"मैं मराठी भाषाका शिवाजी हूँ"। इस उक्तिका अर्थ यह है कि जिस प्रकार शिवाजीने मुसलमानोंके प्रभावसे महाराष्ट्रका उद्धार किया था, उसी प्रकार अँग्रेजी भाषा और साहित्यके अनिष्ट-प्रभावसे मराठी की रक्षा शास्त्रीजीने की। अँग्रेजी भाषाका महत्व चिपळूणकरजी जानते थे। उन्होंने

उसे 'बाघिनका दूध' कहा है। लेकिन स्वाभिमानके लिए मातृभाषाके महत्वको उन्होंने उससे भी अधिक माना।

आधुनिक साहित्यकी वैचारिक परम्परा :

बाल गंगाधर तिलक (१८५६–१९२०): तिलकजीको इस भारतमें कौन नहीं जानता ? भारतके राजकीय असन्तोषके जनक, विख्यात राजनीतिज्ञ एवं चतुर प्रबन्धक, श्रेष्ठ पत्रकार, वेद आदि प्राचीन साहित्यके गम्भीर मर्मज्ञ, तत्वचिन्तक और भारतीय स्वराज्यके जनक तिलकजीकी कीर्ति अखिल भारतमें फैली हुई है। उनका 'केसरी' पत्र आज भी मराठी जनताका मार्गदर्शन करता है। 'केसरी' ने जन-जागृतिकी एक तेजस्वी शक्ति बनकर आरम्भसे ही राष्ट्र निर्माणका जो कार्य किया है,वह भारतके इतिहासमें अनुपय है। तिलकजीका 'गीता रहस्य' या 'कर्मयोग शास्त्र' ग्रन्थ मराठी भाषाका एक अनमोल रत्न है। मांडलेके कारागृहमे लिखे हुए इस ग्रन्थने मराठी मनके निर्माणमें बहुत कुछ किया है। भारतकी प्रमुख भाषाओंमें इसका अनुवाद हो चुका है।

गोपाल गणेश आगरकर (१८५६–१८९५): ये तिलकजीके सहकारी, महाराष्ट्रके एक ठोस समाजसेवक, बुद्धिवादके प्रवर्तक और 'सुधारक' पत्रके सम्पादक थे। इन्होंने 'डोंगरीच्या तुरुंगांतील १०१ दिवस', 'विकारविलसित', 'वाक्यमीमांसा' आदि ग्रन्थ लिखे हैं।

शिवराम महादेव परांजपे (१८६४–१९२९) : इसी कालमें परांजपेजीने अपने 'काळ' नामक समाचारपत्रसे जनतामें शुद्ध स्वातन्त्र्यकी उपासना-बुद्धिका निर्माण किया। वक्रोक्ति, उपहास, उपरोध, व्याजस्तुतिसे उन्होंने प्रस्थापित सरकारकी कड़ी आलोचना करके लोगोंमे स्वाधीनता-प्रेमको उभाड़ा। 'काळ पत्रांतील निवड़क निबन्ध' (भाग १ से १०), 'साहित्य-संग्रह' आदि उनकी पुस्तकें मराठीमे अमर हैं। 'संगीत कादम्बरी', 'भीमराव', 'मानाजीराव', 'पहिला पांडव' आदि नाटक और 'गोविन्दाची गोष्ट', 'विन्ध्याचल' आदि उपन्यास उन्होंने लिखे है।

विश्वनाथ काशीनाथ राजवाडे (१८६३–१९३६) : उच्च कोटिके इतिहास संशोधक हुए। स्वार्थत्यागपूर्ण ज्ञानप्राप्तिका एक नया मार्ग उन्होंने समकालीन युवकोंके सामने प्रस्तुत किया। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन इतिहासकी साधन-सामग्री जुटानेमें लगा दिया था। 'ऐतिहासिक कागदपत्रें' (खण्ड १–२२), 'मराठ्यांच्या इतिहासाचीं साधनें' (खण्ड १–२३), 'एकनाथ पूर्वकालीन ज्ञानेश्वरी', 'राधामाधवविलास चम्पूकी प्रस्तावना', 'ज्ञानेश्वरीचें व्याकरण', 'रामदास' इत्यादि उनके ग्रन्थ मराठीकी विचार-सम्पदाको बढ़ानेवाले है।

डॉ. श्रीधर व्यंकटेश केतकर (१८८४-१९३७): मराठीके एक प्रकाण्ड पण्डित थे। उनका 'महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश' मराठी भाषाका सम्पत्ति-भण्डार है। 'भारतीय समाजशास्त्र' और 'प्राचीन महाराष्ट्र' इन गम्भीर ग्रन्थोके साथ उन्होंने 'आशावादी', 'ब्राह्मण-कन्या', 'परागन्दा', 'गाँवसासू', 'विचक्षणा' आदि उपन्यास भी लिखे हैं।

लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर (१८७२–१९४१) : मराठीके प्राचीन सन्त-साहित्यके मर्मज्ञ थे। उन्होंने मराठी साहित्यका विस्तृत इतिहास तीन खण्डोंमें लिखा है। ज्ञानेश्वर, तुकाराम, एकनाथ, मोरोपन्त आदि प्राचीन मराठी सन्तोंके चरित्र रसयुक्त भाषामें प्रस्तुतकर उन्होंने आधुनिक कालमें सन्त-साहित्यके प्रति रुचिका निर्माण किया।

नरसिंह चिन्तामण केळकर (१८७२–१९४७) : साहित्य-सम्राट न. चि. केळकरजीका मराठी साहित्यकी शोभावृद्धि करनेवाले जो अनेक साहित्यकार पैदा हुए, उनमें सर्वप्रथम नाम आता है। ये 'केसरी' के सम्पादक और 'सह्याद्रि' मासिकके संस्थापक थे। इस रसिक विद्वानने साहित्यके सभी क्षेत्रोंमें अपना अधिकार प्रस्थापित किया है। उन्होंने 'नवलपूरचा संस्थानिक', 'कावळा व ढापी' उपन्यास; 'तोतयाचें बण्ड', 'कृष्णार्जुन युद्ध', 'अमात्यमाधव', 'चन्द्रगुप्त' आदि नाटक लिखे हैं। अिनके अलावा गम्भीर विषयोंपर बड़ी सरल भाषामें लिखे हुए इनके अनेक ग्रन्थ हैं। 'हास्यविनोद-मीमांसा', 'भारतीय तत्वज्ञान', 'ज्ञानेश्वरी सर्वस्व', 'मराठे व इंग्रेज', 'टिळक-चरित्र' (खण्ड १–३) आदि ग्रन्थोंने केळकरजीका नाम मराठी-साहित्यमें अमर कर दिया है। विनोद मराठी-साहित्यका महत्वपूर्ण अंग है।

श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर (१८७१–१९३४) : कोल्हटकरजीने मराठी भाषामें विनोदी साहित्यके युगकी सृष्टि की। 'साहित्य बत्तिशी' या 'सुदाम्याचे पोहे' मराठीका प्रथम विनोदी ग्रन्थ है। इसीसे प्रेरणा पाकर बादमें श्री गडकरी और आचार्य अत्रे आगे बढ़े थे। कोल्हटकर उच्च कोटिके आलोचक भी थे। उन्होंने 'वीरतनय', 'मूकनायक', 'गुप्तमंजूष', 'मतिविकार' इत्यादि नाटक भी लिखे हैं।

वामन मल्हार जोशी (१८८२–१९४३) : मराठीके तत्वज्ञ उपन्यासकार हैं। इन्होंने मराठी साहित्यके वैचारिक पार्श्वको सम्पन्न बनाया है। 'सॉक्रेटिसाचे सम्वाद', 'नीतिशास्त्र प्रवेश', 'विचार-सौन्दर्य', 'विचार-विलास', 'विचार-लहरी' आदि इनके ग्रन्थोंमे अनेक तात्विक प्रश्नोंकी चर्चा की गई है।

इस कालके अनेक साहित्यकारोंके नाम उल्लेखनीय है। मराठी गद्यका विकास अनेक शाखाओंमें हो रहा था। वैचारिक परम्पराके साथ उपन्यास, कथा आदि लालित्यपूर्ण साहित्यकी भी प्रगति इस कालमें हुई। कविता, नाटक, उपन्यास, लघुकथा, (शॉर्ट स्टोरीज़), लघ निबन्ध (पर्सनल ऐसे) नाट्यछटा (ड्रेमेटिक मोनोलॉग), रूपककथा, आकाश नाटिका, चित्रपट-कथा आदि विविध अंगोंसे मराठी साहित्य समृद्ध हुआ।

आधुनिक मराठी कविता :

'केशवसुत' या कृष्णाजी केशव दामले (१८६६–१९०५) आधुनिक मराठी काव्यके निर्माता हैं। इन्होंने मराठी कविताका स्वरूप ही बदल दिया। परमार्थ और तत्वज्ञानमें मग्न हुई मराठी कविता 'केशवसुत' के स्पर्शसे तरुण हो उठी और उसने अँग्रेजी साहित्यके प्रभावसे नए हास-विलासके अनेक प्रकार सीखे। वह लौकिक

विषयोंकी ओर मुड़ गई। 'केशवसुत' ने राजनैतिक, सामाजिक, प्रकृति वर्णनपरक शिशुगीतात्मक, प्रणयात्मक गूढ़ गुञ्जनात्मक (रहस्यवादी) इत्यादि विविध प्रकार की कविताएँ लिखी हैं। इनकी कविता आकारसे लघु किन्तु गेय होनेके कारण लोकप्रिय बन गई। 'केशवसुत' के साथ ही बालकवि (त्र्यं. बा. ठोंबरे), ना. वा. टिळक, विनायक जनार्दन करदीकर, राम गणेश गडकरी (गोविन्दाग्रज)—ये चार प्रसिद्ध कवि हो गए। बालकविने प्रकृति-सौन्दर्यका सहज-सुन्दर वर्णन किया है। ना. वा. टिळकने ईसाई होकर भी भक्तिका सौन्दर्य मराठीको प्रदान किया। प्रेमकी अमरकथा गोविंदाग्रजने गाई और विनायकने ऐतिहासिक वीरोंकी पराक्रम कथाओंको मराठी कवितामें साकार रूप दे दिया। १९२० के लगभग 'रवि किरण मंडळ' नामक एक कवियोंकी मण्डली स्थापित हुई थी। उसमें माधव त्र्यंबक पटवर्धन (माधव जूलियन), यशवन्त दिनकर पेण्ढरकर, शंकर केशव कानेटकर (गिरीश), गजानन त्र्यंबक माडखोलकर, श्री. बा. रानडे, वि. द. घाटे, नाट्य-छटाकार दिवाकर आदि प्रमुख साहित्यकार थे। कवि माधव जूलियन मराठी और फारसीके पण्डित थे। उनके 'फारसी-मराठी शब्दकोश' और 'छन्दोरचना' नामक शास्त्रीय ग्रन्थोंके साथ-साथ विरहतरंग', 'सुधारक', 'नकुलालंकार' ये खण्डकाव्य और 'सुनीतांजलि', 'गज्जलांजलि', 'स्वप्नरंजन' आदि काव्य-संग्रह प्रसिद्ध हैं। कविवर यशवन्तकी प्रतिभा आज भी मराठी कविताकी शोभा बढ़ाती है। भावकाव्यके उद्गाता एकमेव यशवन्त ही हैं। 'बन्दिशाळा', 'जयमंगला', 'काव्य-किरीट',आदि खंडकाव्योंके अलावा 'यशोधन', 'यशोगन्ध', 'पाणपोई', 'ओजस्विनी' आदि उनके काव्य-संग्रह अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

इसी कालमें नारायण मुरलीधर गुप्ते तथा 'बी' कविका भी उल्लेख आवश्यक है।'बी' कविकी कविता तत्वचिन्तनात्मक होकर भी विलास-माधुर्यसे मण्डित है। उनका 'कमला' खण्डकाव्य मराठीमें एक प्रतिभायुक्त चमत्कार है। चन्द्रशेखर शिवराम गोऱ्हेका 'चन्द्रिका' काव्य-संग्रह शीतल चन्द्र प्रकाशके समान आल्हाददायक है। 'काय हो चमत्कार' नामक उनका खण्डकाव्य अनूदित कृति होकर भी मनको मुग्ध करनेवाला है। भास्कर रामचन्द्र ताम्बेकी कविता सांसारिक भावनाओंका आल्हादकारी आविष्कार है। वीर सावरकरकी ज्वलन्त देशभक्ति उनके काव्यमें भी हमें मिलती है। अन्दमानकी काल कोठरीमें उनका काव्य-कमल खिला था। अुनके 'कमला', 'गोमान्तक' आदि खण्डकाव्य मराठी कविताके अनमोल अलकार हैं।

आधुनिक मराठी उपन्यास :

मराठीका पहला सामाजिक उपन्यास 'यमुना पर्यटण' (१८५७) बाबा पदमनजीने लिखा। मराठीका पहला अद्भुत रम्य उपन्यास 'मुक्तामाला' है और पहला ऐतिहासिक उपन्यास गुजीकरका लिखा हुआ 'मोचनगड' है। आधुनिक कालके एकमेव उपन्यास सम्राट हैं हरि नारायण आपटे (१८६४–१९१९)। अनेक सामाजिक

समस्याएँ लेकर उन्होंने एक-से-एक सरस उपन्यास लिखकर मराठीका उपन्यास-साहित्य समृद्ध किया। 'पण लक्षांत कोण घेतो ?', 'मी, यशवन्तराव खरे', 'मायेचा बाजार', 'भयंकर दिव्य', 'गणपतराव' आदि सामाजिक उपन्यास लिखकर आपटेजीने समकालीन प्रश्नोंको उभारकर सामने रखा है। भाषा-शैली, कथावस्तु, सम्वाद, स्वभाव-चित्रण आदि सभी दृष्टिसे उनकी उपन्यास-कला उच्च कोटिकी है। हरि नारायण आपटेने ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर महाराष्ट्रका अभिमान जागृत करनेका महत्वपूर्ण कार्य किया है। उनके 'गड आला पण सिंह गेला', 'उषःकाल', 'सूर्योदय', 'चन्द्रगुप्त', 'म्हैसूरचा वाघ', 'कालकूट' इत्यादि उपन्यासोंने मराठीमें ऐतिहासिक उपन्यासोंकी परम्पराका निर्माण किया है। इसी कालमे वि. वा. हडप, नाथमाधव, वि. सी. गुर्जर, ना. ह. आपटे आदि उपन्यासकारोंके भी नाम आते है। दार्शनिक उपन्यासकारोमें वा. म. जोशीका नाम सबसे प्रथम आता है। उपन्यासको उन्होंने साधन-रूपसे स्वीकृत करके उसके माध्यमसे अनेक तात्विक प्रश्नोंका विवेचन किया है। 'रागिणी', 'सुशीलेचा देव', 'नलिनी, 'इदु काळे आणि सरला भोळे', 'आश्रम-हरिणी' आदि उनके प्रख्यात उपन्यास है।

आधुनिक मराठी नाटक :

मराठी साहित्यका एक गौरवपूर्ण अग है नाटक। सांगलीके विष्णुदास भावे मराठी नाट्य सृष्टिके आद्य प्रवर्तक है। सन् १८४३ मे उनका 'सीता स्वयवर' नाटक रंगमंचपर आया। पौराणिक नाटकोंकी ओर इस कालमे अधिक रुचि थी। कलाकी दृष्टिसे मराठी नाटकोंके जनक है—बळवन्त पांडुरग किर्लोस्कर। उनके 'सौभद्र' नाटकका सौन्दर्य आज भी कम नहीं हुआ है। इनके 'शाकुन्तल' और 'रामराज्यवियोग' नाटक भी बहुत प्रसिद्ध है। सगीत नाटककी परम्परा भी किर्लोस्करने शुरू की। इसी परम्परामे प्रतिभावान नाटककार श्री गोविन्द बल्लाळ देवल हुए है। उनका 'शारदा' नाटक एक सामाजिक समस्यापर आधारित होनेके कारण उस समय बडा लोकप्रिय हुआ और अपनी कलाके लिए आज भी वह रसिकमान्य है। श्री. कृ. कोल्हटकरके 'वीरतनय', 'मूकनायक', 'मतिविकार', 'सहचारिणी', इत्यादि नाटक भी प्रसिद्ध है। ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों द्वारा जन-जागृतिका कार्य किया श्री कृ. प्र. खाडिलकरजीने। 'स्वयंवर', 'द्रौपदी', मेनका', 'भाऊबंदकी', 'कीचकवध', 'मानापमान' आदि नाटकोंने मराठी रंगभूमिके ऐश्वर्यमें बहुत वृद्धि की है। अपनी प्रतिभासे जन-हृदयको आकृष्ट करनेवाले मराठीके श्रेष्ठ कलाकार है राम गणेश गडकरी। 'भावबन्धन', 'पुण्यप्रभाव' 'एकच प्याला', 'प्रेम-सन्यास', 'राज-संन्यास' आदि नाटकोंको देखनेके लिए आज भी लोग उत्सुक रहते हैं। उनका भाषा-विलास असाधारण है। प्रचारकी दृष्टिसे श्रेष्ठ नाटककार है भा. वि. उर्फ मामा वरेरकर। 'हाच मुलाचा बाप', 'सन्याशाचा ससार', 'सत्तेचे

गुलाम', 'सोन्याचा कळस', 'अपूर्व बंगाल' आदि उनके नाटकोंने मराठीमें अभूतपूर्व कार्य किया है। श्री माधवराव जोशी तथा वीर वामनराव जोशीके नाटकोंने भी मराठी रंगमञ्चको भली-भाँति समृद्ध बनाया है।

आधुनिक मराठी लघुकथा (कहानी) :

अँग्रेजीके 'शॉर्ट स्टोरी' का मराठी पर्याय है 'लघुकथा'। कथा सुननेकी आदत मनुष्यको जन्मसे ही रही है। मराठी भाषाके प्रारम्भ-कालसे अनेक प्रकारकी कथाएँ परम्परासे चलती आई हैं। आधुनिक कालके सबसे प्रथम कथाकार हैं—श्री ह. ना. आपटेजी। न. चि. केळकर, वा. म. जोशी, शि.म. परांजपे, आनन्दीबाई शिर्के इत्यादि पुराने लेखकोंने मराठीकी कथा-सृष्टिको समृद्ध किया था।

विविध साहित्य :

इसी प्रकार मराठी साहित्यकी प्रत्येक शाखा आधुनिक कालमें ऐश्वर्यशाली बनी। मराठीका कोश वाङ्मय अति महत्वपूर्ण है। 'व्यावहारिक ज्ञानकोश', 'सुलभ विश्वकोश'के साथ 'वाक्सम्प्रदाय कोश', 'चरित्रकोश' आदि सन्दर्भ-ग्रन्थका भण्डार बहुत ही समृद्ध है। इस कालका मराठीका आलोचना-साहित्य भी उच्च श्रेणीका है। श्री. कृ. कोल्हटकर, माडखोलकर, केळकर—जैसे प्रसिद्ध आलोचक मराठीको मिले हैं। भाषा-शास्त्र, चरित्र-वाङ्मय, तत्वज्ञानात्मक साहित्य, विनोदी साहित्य, बाल साहित्य, इतिहास, वैज्ञानिक साहित्य आदि विविध शाखा और उप-शाखाओंकी भी अभिवृद्धि हुई है।

[**नोट**—सन् १९२० से आज तकका मराठी साहित्यका संक्षिप्त परिचय 'कवि-श्री माला : मराठी—यशवन्त दिनकर पेण्ढरकर' मे दिया गया है।]

● ● ●

कृष्णाजी केशव दामले 'केशवसुत'

[कवि-परिचय]

कृष्णाजी केशव दामले 'केशवसुत'

• • •

कविवर 'केशवसुत' या कृष्णाजी केशव दामले (सन १८६६–१९०५) आधुनिक मराठी कविताके जनक माने जाते हैं। आधुनिक कवितामें 'केशवसुत' जोने नए प्राणोंका सञ्चार किया। 'केशवसुत'की पूर्वकालीन मराठी कवितामें प्रायः अनूदित कविताओंकी ही संख्या अधिक थी। संस्कृत और अँग्रेजी काव्य-नाटकोंका अनुवाद ही लेखकोंका लक्ष्य था। न उसमें प्राचीन सन्त-काव्यकी प्रेरणा-शक्ति थी, न उसमें शाहिरी काव्य* की सजीव और रसमयी वृत्ति ही। 'केशवसुत'-पूर्वकालीन कविता इस प्रकार रसहीन और बालोपयोगी रहनेके कारण यदि उसमें मनोज्ञ काव्यकी सम्वेदनाका अभाव हो गया हो, तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं।

सन् १८१८ में पूनाकी मराठी-राज्यपरम्परा और सन् १८४८ में सातारकी छत्रपति राजाओंकी परम्परा नष्ट होकर अखिल महाराष्ट्रमें अँग्रेजोंका राज्य स्थापित हो गया था। अँग्रेजी राज्यके साथ अँग्रेजी भाषा आई, अँग्रेजी साहित्य आया, अँग्रेजी रहन-सहन आई। शान्तिपूर्ण और अनुशासित राज्य-सञ्चालनके लिए अँग्रेजी राज्यका सर्वत्र स्वागत हुआ। अँग्रेजी सभ्यता, अँग्रेजी संस्कृति, अँग्रेजी काव्य-सम्पदा, अँग्रेजी विचार-वैभव आदिकी ओर शिक्षित लोगोंका मन आकर्षित हो रहा था। अँग्रेजी राज्य एक ईश्वरी वरदान माना जाने लगा था। अतः पहले दो-तीन दशकोंमें अँग्रेजी राज्यकी स्तुति होना अपरिहार्य था। इसी कालमें शास्त्री-पण्डितोंने संस्कृत काव्य नाटकोंके अनुवाद मराठीमें किये और अँग्रेजी पढ़े-लिखे विद्वानोंने अँग्रेजी

---

* **शाहिरी काव्य**––शिवाजी तथा उनके बादके महाराष्ट्रमें वीररसपूर्ण पोवाड़ोंकी रचना करनेवाले जन-कवियोंके काव्य।

साहित्यका अनुवाद कार्य किया। लेकिन अनुवाद अनुवाद ही है, स्वतन्त्र प्रेरणाकी अनुभूति उसमें न रहनेके कारण सर्व-सामान्य जनता काव्यके क्षेत्रसे उदासीन ही रही।

अँग्रेजी राज्य स्थिर होनेके बाद जागृतिकी पहली पुकार विष्णुशास्त्री चिपळूणकरजी (१८५०–१८८२) ने लगाई। सन् १८७४ में उनका 'निबन्धमाला' मासिक प्रकाशित होने लगा। शास्त्रीजीकी 'निबन्धमाला' ने जन-जागृतिका एक प्रचण्ड तूफान खड़ा कर दिया। लोकमानसमें स्वतन्त्रताकी पहली प्रेरणा उन्होंने ही जगाई। अँग्रेजी राज्यसे होनेवाली हानियोंकी विष्णुशास्त्री चिपळूणकरजीने निर्भय और कड़ी आलोचना की। 'इतिहास', 'वक्तृत्व', 'लोकहितवादी', 'हमारे देशकी स्थिति' आदि उनके निबन्धोंने महाराष्ट्रके आधुनिक इतिहासमें युगान्तरकारी कार्य किया है। सरकारी नौकरी छोड़कर देशसेवाका एक नया मार्ग उन्होंने समकालीन तरुणोंको दिखाया। चरित्र, साहित्य-समीक्षा, इतिहास-लेखन, कविता, प्राचीन साहित्य-संशोधन, समाज-कार्य, राजनीति आदि अनेक क्षेत्रोंमें चिपळूणकरजीकी प्रेरणासे ही कार्य परिपुष्ट हुआ। शिक्षाके क्षेत्रमें उन्होंने एक नया प्रयोग किया, जिसका अनुकरण बादमें सारे महाराष्ट्रमें हुआ। सन् १८८० में राष्ट्रीय शिक्षा देनेके लिए उन्होंने 'न्यू इंग्लिश स्कूल' नामक एक अँग्रेजी स्कूल स्थापित किया। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ बाल गंगाधर तिलक और विख्यात समाज-सुधारक गोपाळ गणेश आगरकर उनके शिष्य थे। इन दोनों युवकोंकी सहायतासे विष्णुशास्त्री चिपळूणकरजीने 'केसरी' नामक एक मराठी समाचार पत्र और 'मराठा' नामक एक अँग्रेजी पत्र निकाला। चिपळूणकरजी अपने समकालीन तिलक और आगरकर-जैसे युवकोंके नेता थे। सन् १८८२ में चिपळूणकरजीका देहान्त हुआ, लेकिन उनके द्वारा प्रारम्भ की हुई महान कार्योंकी धारा बहुमुखी होकर प्रवाहित होती रही।

लोकमान्य तिलक और गोपाल गणेश आगरकर, इन दोनोंका गहरा असर महाराष्ट्रके समाज-जीवनपर पड़ा है। उस समय नव-जागृतिका जो पावन स्रोत बह रहा था, उसने सारे युवक-समाजको आप्लावित कर लिया था। विष्णुशास्त्रीजीसे स्फूर्ति लेकर तिलकजीने राजनैतिक क्षेत्रमें, आगरकरजीने समाज-सुधारके क्षेत्रमें, इतिहासाचार्य राजवाडेजीने इतिहास-संशोधनके क्षेत्रमें तथा श्री लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकरजीने साहित्यके क्षेत्रमें महत्वपूर्ण कार्य किया। मराठी कविता भी उसके प्रभावसे बच न सकी। प्रचलित काव्य-धाराको 'केशवसुत' ने एकदम नया स्वरूप दे दिया। 'केशवसुत'के स्पर्शसे आधुनिक मराठी कविताका न केवल बहिरंग बदला, बल्कि उसकी आत्माकी पुकार भी नए साँचेमें ढली। आधुनिक मराठी कविता एक नया प्राण-तत्व लेकर उनके मुखसे प्रवाहित होने लगी। चिपळूणकर, तिलक और आगरकर जिस स्कूलमें शिक्षक थे, उसी स्कूलके 'केशवसुत' विद्यार्थी थे। सभी क्षेत्रमें होनेवाली जागृति देखकर 'केशवसुत' का कवि-मन आन्दोलित हो उठा और उन्होंने नए युगकी तुरही बजाई। इस तूर्य-नादसे सब जान गए कि एक नए तारेका

मराठीके काव्य-क्षितिजपर उदय हो गया है। इस कविके काव्यका स्वरूप एकदम नया था, उसके विषय नए थे और रचना-पद्धति भी नए ढंगकी थी। प्रसिद्ध उपन्यासकार हरि नारायण आपटे 'केशवसुतजी' के मित्र थे। वर्ड्स्वर्थ, कीट्स, शेली आदि अँग्रेजी कवियोंकी रचनाओंसे 'केशवसुत' जी परिचित थे।

कविवर 'केशवसुत' के काव्यका परिचय होनेके पूर्व और आधुनिक मराठी कवितामें उनका स्थान निश्चित करनेके पूर्व हम उनके संक्षिप्त जीवनसे परिचित हो लें। 'केशवसुत' के पिता श्री केशव विट्ठल दामले और उनके पूर्वज रत्नागिरी जिलेके कोळंबे गाँवके रहनेवाले थे। केसोपन्त (केशव पन्त) दामले मराठी पाठशालामें अध्यापक थे। पेन्शन लेनेके बाद वे दापोली तालुकाके वळणे नामक गाँवमें आकर रहने लगे। इसी गाँवका वर्णन कविने 'एक खेडे' (एक देहात) नामक कवितामे बड़े सुन्दर ढंगसे किया है। इस गाँवके प्रकृति-सौन्दर्यका वर्णन 'केशवसुतजी' ने अन्यत्र भी किया है। केसोपन्त दामलेजीकी बारह सन्तानें थीं--सात पुत्र और पाँच कन्याएँ। 'केशवसुत' या कृष्णाजी केशव दामले पाँचवें पुत्र थे। उनका जन्म सन् १८६६ में मालगुण्ड गाँवमें, जिसका वर्णन कविने 'माल्यकूट' नामक एक कवितामे किया, हुआ था। कहते है कि कृष्ण पक्षमें होनेके कारण पुत्रका नाम कृष्ण हो गया। उन्होंने 'केशवसुत' नाम तो बादमे कविताके लिए रखा। 'केशवसुत' का अर्थ होता है केशवजीके पुत्र। बचपनसे ही 'केशवसुत' शान्तिप्रिय और गम्भीर स्वभावके थे। जन-सम्पर्कसे वे सदा दूर रहा करते थे। उनकी मित्र-मण्डली भी सीमित थी। प्रकृति-सौन्दर्य, नदी, नाले, पर्वत-श्रेणी आदि उनके मित्र थे। उन्होंने एक जगह कहा है--'जेथें ओढे वनराजी। तेथें वृत्ति रमें माझी'--[जहाँ झरने और प्रकृति-सौन्दर्य है, वहीं मेरा मन रमता है।] दीपावलीके समय घर-घरमे आनन्दोल्लास हुआ करता है, पर 'केशवसुत'?

उन्होंने 'दिवाळी' कवितामे कहा है :--

मी सध्यासमयीं खुशाल गिरणा तीरावरी बैसुनी।
कालक्षेप करीन उन्मन असा वेड्यापरी गाउनी।

[दीपावलीकी सन्ध्यामे मै मजेसे गिरणा नदीके तीरपर जाकर बैठ जाऊँगा और मस्त होकर गाते हुए समय व्यतीत करूँगा।]

वे हमेशा गम्भीर और उदास-से रहा करते थे।

एक बार पाठशालामे 'केशवसुत' के अध्यापकने कक्षामे ही उनको 'दुर्मुख' कहा। इसपर 'केशवसुत' ने उत्तर दिया :--

यांचे तोंड कुरुप हें विधिवशात् गाईल काव्यें नवीं...
माझ्या दुर्मुखलेल्या मुखामधुनि या चालावयाचा पुढे।
आहे सुंदर तो सदा सरस वाऽनिष्यन्द चौहींकडे।

[मेरा मुँह उदास और कुरूप है, लेकिन इसी मुखसे नई कविता निकलेगी, सरस वाङ्मनिष्पन्द चलेगा।]

उनके मनमें इस प्रकारका आत्मविश्वास प्रारम्भसे ही था। उनकी एक कविता 'नैऋत्येकडील वारा' (नैऋत्यके ओरकी पवन) अति प्रसिद्ध है। उसमें उन्होने अपने विषयमें लिखा है :—

वाग्देवीसुत जन्मला अपुलिया ग्रामांत यालागुनी।
जै जै कार करा सुरां परिसवा हा मंगलाचा ध्वनि।

[अपने गाँवमे सरस्वती देवीका पुत्र पैदा हुआ, इसलिए जय-जयकार करो और उस मंगल-ध्वनिको देवताओं तक पहुँचा दो।]

'केशवसुत' स्वभावसे अति विनीत थे। वे पहलेसे ही एकान्त प्रिय थे। अलौकिक, दिव्य विषयोंका चिन्तन सदा ही उनके मुखपर दमकता रहता था। प्राचीन कालके अनुसार अुनकी प्राथमिक शिक्षा घरपर ही पूर्ण हुई। उनका विवाह पन्द्रह वर्षकी अवस्थामे चिपळूणके पास एक ग्रामीण चिपलेजी की कन्यासे हुआ। 'केशवसुत' की पत्नीके बारेमें अनेक प्रकारके विचार प्रकट किए गए है। वह एक अत्यन्त सीधी-साधी और सुशील पत्नी थी; न तो बहुत सुन्दर और न कुरूप। 'केशवसुत' जीने अपनी पत्नीका रोचक और सुन्दर उल्लेख अपने काव्यमें अनेक बार किया है। 'प्रियेचे ध्यान' (प्रियाका ध्यान) कवितामें उन्होंने अपनी स्वप्नमयी कान्ताका उल्लेख बड़ी सूचकतासे किया है। 'नैऋत्येकडील वारा' मे पत्नीसे प्राप्त पवन-पत्रोंका वर्णन भी बड़े काव्यमय ढगसे आया है।

'केशवसुत' जीने प्रणयका एक नया स्वरूप आधुनिक कवितामें उपस्थित किया है। नखशिखका वस्तुनिष्ठ वर्णन पुरानी बात हो गई थी। स्त्री एक प्रेरक शक्ति है, स्वामिनी है, हृदयकी देवी है, आदि कल्पनाएँ आधुनिक कालमें ही प्रतिष्ठित हुई। कविकी प्रतिभा दृष्टि स्त्रीकी देहसे उसकी आत्माकी ओर मुड़ी।

'केशवसुत' जीने एक जगह कहा है :—

"प्रीति मिळेल का हो बाजारी,
प्रीति मिळेल का हो शेजारी
पहा शोधुनी हृदयांत.....

[क्या प्रेम बाजारमें मिलेगा? क्या वह पास-पडोसमें मिलेगा? अरे वह तो हृदयमें है, ढूंढ़कर देखो।]

इस प्रीतिपर ही 'केशवसुत' जीकी एक बड़ी सरस कविता है—'प्रत'। एक पति दूर गाँव जा रहा है, उसकी पत्नीने उसे पत्र लिखनेके लिए कहा था। पत्र

लिखते समय पतिके मनकी जो स्थिति हुई, उसका चित्र कविने इस कवितामें बड़ी ही मार्मिकतासे खींचा है। पतिने लिखा–'मै तुझे पत्र कैसे लिखूँ? तू ही तो मेरे लोचनोंका प्रकाश है। तू ही मेरी आत्माका विकास है। मेरे हाथकी नस तेरे हाथमे धड़क रही है। मेरा हृदय तेरी छातीमें उड़ रहा है। तू अपने हाथको देख, हृदयको देख, मेरी विकृति और मेरी प्रकृति (स्वास्थ्य) वहीं तुझको मिलेगी।'

सन् १८८२ मे 'केशवसुत' अध्ययनके लिए बड़ौदा गए। वहाँ उनके ज्येष्ठ बन्धु श्रीधर केशव दामले सस्कृत और गणितके प्रोफेसर थे। श्रीधर केशव दामले अत्यन्त प्रतिभाशाली थे। उन्हें सस्कृतकी 'पण्डित जगन्नाथ शंकर शेट' छात्रवृत्ति मिली थी। 'केशवसुत' के एक बन्धु मोरो केशव दामले (मराठीके प्रसिद्ध वैयाकरणी) भी उस समय श्रीधर केशवके पास ही अध्ययन कर रहे थे। 'केशवसुत' जीकी पढ़ाई भी वहाँ शुरू हो गई, परन्तु दुर्दैवसे एक वर्षके अन्दर ही श्रीधरजीका देहान्त हो गया और 'केशवसुत'जीको अपने मामा श्री रामचन्द्र गणेश करंदीकरके पास वर्धा जाना पड़ा। वर्धासे वे तुरन्त नागपुर चले आए। इसी समय 'केशवसुत' जीका परिचय मराठीके एक प्रसिद्ध कवि नारायण वामन तिलकजी (१८६२–१९१९) से हुआ। लेकिन वर्धा-नागपुरका यह वास्तव्य उनके लिए लाभकर नहीं हुआ। वे पूना आकर विश्राम बाग हाईस्कूलमें दाखिल हो गए। बादमे वे पूनाके प्रसिद्ध विद्यालय न्यू इग्लिश स्कूलके विद्यार्थी हुए। समाज सुधारक आगरकरजीके विचारोंका प्रभाव इसी समय उनके मनपर पड़ा। 'तुतारी', 'अन्त्यजके लड़केका पहला प्रश्न', 'स्फूर्ति' आदि कविताओंमें 'केशवसुत' जीके नव-विचारोंकी प्रभा प्रकट हुई है।

'केशवसुत' सरकारी नौकरी नहीं करना चाहते थे। मैट्रिक होनेके बाद बम्बईके एक मिशनरी हाईस्कूलमे वे अध्यापक हुए। सन् १८९३ तक वे बम्बईमें ही रहे। तदनन्तर खानदेशके भडगाँव नामक गाँवमें उन्होंने शिक्षककी नौकरी पकड़ ली। फैजपूरके ऐंग्लो-वर्नाक्यूलर पाठशालामें भी उन्होने पढ़ाया। खानदेशमे वे सन् १९०३ तक रहे। उसके बाद सन् १९०३ मे धारवाड़की सरकारी हाईस्कूलमे मराठी और अँग्रेजी विषयोके अध्यापक नियुक्त हुए। सन् १९०५ मे हुबली और धारवाड़मे प्लेग फैला। 'केशवसुत' और उनकी पत्नी दोनोंको प्लेगका ज्वर आया। ७ नवम्बर १९०५ को 'केशवसुत' जीका स्वर्गवास हुआ। चार-पाँच दिनोके बाद उनकी पत्नीने भी अपने पतिका अनुगमन किया। 'केशवसुत' जीकी आयुके ३९ वर्षोंकी यही सक्षिप्त कथा है।

'केशवसुत'जीका लौकिक जीवन-चरित्र एक सामान्य जनकी भाँति है, परन्तु उनका काव्य-जीवन एक ज्वलन्त दीप्तिसे मण्डित है। उसके प्रकाशसे मराठीका काव्य-जगत् उद्भासित हो उठा। उनकी कविताने मराठी कविताका रूप एकदम बदल दिया। उसमें सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक विचारोंको आधुनिक ढंगसे अभिव्यक्ति मिलने लगी। पुरानी कविताके विषय पारमार्थिक और आध्यात्मिक थे,

पर 'केशवसुत' की कविता-दृष्टि लौकिक विषयोंकी ओर अधिक रही। प्रकृति-वर्णन, शैशव, प्रीति, रहस्यवाद, काव्य और कवि आदि अनेक विषयोंपर लिखी हुई उनकी कविताएँ प्रसिद्ध है। उनकी कवितामें प्राचीन वर्ण वृत्तोंका यत्र तत्र उपयोग है, परन्तु मात्रिक वृत्तोंका प्रयोग बहुत अधिकतासे हुआ है। इसीलिए 'केशवसुत' के काव्यमें गेयता प्रभूत मात्रामे विद्यमान है। अँग्रेजीके सॉनेटका मराठीमें प्रथम उपयोग 'सुनीत' नामसे 'केशवसुत' जीने ही किया। 'मयूरासन और ताजमहल' मराठीका सर्वप्रथम सुनीत है। छोटे-छोटे लौकिक विषय उनकी प्रतिभाके स्पर्शसे असामान्य बन गए। सीधा-सीधा विषय भी उनकी कलमसे आशय-घनिष्ठ हो उठा (साध्या ही विषयांत आशय कधी मोठा किती आढळे)। मरणकाल, सृष्टि और कवि, एक देहात, मदन और मदनिका, कामान्धत्व, ईश्वरका ग्रन्थ, प्रीति, प्रयाण-गीत, समृद्धि और प्रीति, कहाँ जा रहा है?, पुष्पके प्रति, कविताका प्रयोजन, स्वप्न; सृष्टि, तत्त्व और दिव्यदृष्टि, कर्तव्य और प्रीति, प्रीतिकी भाषा, भृंग, कल्पकता, कवि, दिया और तारा, तुतारी, दो बाजी, मूर्तिभञ्जन, धूमकेतु और महाकवि, झपूर्झा, खोया हुआ श्रेय, सृष्टि और कवि, स्फूर्ति, नया सिपाही, पद्य पंक्ति, हम कौन? आदि कविता-शीर्षक देखकर ही 'केशवसुत' की बहुमुखी प्रतिभाका अनुमान लगाया जा सकता है।

'केशवसुत' की लेखनीसे निःसृत आधुनिक नई कविताके रूपको देखकर पुरानी कविताके अभिमानी चौंक उठे। उन्होंने उनकी आलोचना शुरू कर दी। 'केशवसुत' जीने अनेक बार इन आलोचकोके सामने अपने काव्यके वास्तविक स्वरूपको रखनेकी कोशिश की। 'आम्हीं कोण?' (हम कौन?) उनकी एक प्रसिद्ध कविता है। उसमे वे कहते हैं:—

आम्ही कोण म्हणूनि काय पुससी ? आम्ही असूं लाडके
देवाचे दिधलें असे जग तयें आम्हांस खेळावया ।।
विश्वीं या प्रतिभाबलें विचरतों चोहींकडे लीलया ।
दिक्कालांतुनि आरपार अमुचो दृष्टि पाहाया शके ।।

सारे हो बडिवार येथिल पाहा आम्हांपुढें ते फिके ।।
पाणि-स्पर्शच अमुचा शक्तिसे वस्तूप्रती द्यावया ।।
सौंदर्यातिशया, अशी वसतसे जादू करांमाजि या ।
फोलें पाखडितां तुम्हीं; निवडितां तें सत्त्व आम्हीं निकें ।।

शून्यामाजी वसाहती वसविल्या कोणी सुरांच्या बरें ?
पृथ्वीला सुरलोक साम्य झटती आणावया कोण ते ?
तें आम्हीच सुधा कृतीं मधुनिया ज्यांच्या सदा पाझरे ;
ते आम्हीच शरण्य मंगल तुम्हां ज्यांपासुनी लाभतें ।।

आम्हांला वगळा—गतप्रभ झणीं होतील तारांगणें ।
आम्हांला वगळा—विकेल कवडी मोलावरी हें जिणें ।।

[हम कौन हैं—यह क्यों पूछते हो ? हम कवि लोग परमेश्वरके लाड़ले पुत्र हैं, ईश्वरने यह जगत हमें क्रीड़ाके लिए दिया है। इस जगतमें हम प्रतिभा बलसे सर्वत्र सहज परिभ्रमण करते हैं। हमारी दृष्टि दिशाओं और समयको भेदकर देख सकती है। इस दुनियाकी सारी चकाचौंध हमारे सामने फीकी है। हमारे करोंमें वह जादू है कि उसके स्पर्श-मात्रसे ही वस्तु अत्यन्त सौन्दर्यमयी बन जाती है। तुम तो सिर्फ कचरेको समेटते हो; हम, जो ठोस है, सत्व है, उसका चयन करते है।

भला बताओ तो, इस शून्य आकाशमें देवताओंकी दुनियाँ किसने बसाई इस पृथ्वीको स्वर्गके समान बनानेके लिए कौन प्रयत्न कर रहा है ? वे हम ही है जिनकी कृतियोंसे अमृतकी धारा झरती है। वे हम ही हैं जिनसे तुम्हें आश्रय और कल्याणकी प्राप्ति होती है। बिना हमारे यह ताराओंसे भरा आकाश निष्प्राण हो जायगा। बिना हमारे मनुष्यका यह जीवन कौड़ीमोल बिकने लगेगा।]

'केशवसुत' की आधुनिक कविताने कविके उचित आत्माभिमानको प्रगल्भताके साथ प्रकट किया है। केशवसुतके लिए कविता एक दिव्य, अलौकिक, प्रकाशमयी वस्तु है। उज्ज्वल प्रतिभा-शक्तिका वह एक अनुभवगम्य साक्षात्कार है। निर्जीव पुस्तक में भी कविकी दृष्टि एक सौन्दर्यमयी प्रतिभाके दर्शन करती है। 'दिव्य चिनगारी' 'सृष्टि, तत्व और दिव्य दृष्टि', 'शब्दो, लौट आओ' (शब्दांनों मागुतें या) 'कविता और कवि' आदि कविताओंमें केशवसुतका काव्य-विषयक दृष्टिकोण स्पष्ट हो गया है। 'मेरा अंत' कवितामें उन्होंने प्रतिभासे मस्त कवि-जीवनका एक सुन्दर चित्र खींचा है—

मी पाहिली एक सुरम्य बाला । वर्णूं कसा त्या स्मरसंपदेला ?
वृक्षावरी वीज जधीं पडावी । त्याच्या स्थितींतचि तिची महती पहावी ॥

[मैंने एक सुरम्य बाला देखी। उस स्मरसंपदाका वर्णन किस प्रकार करूँ ? वृक्षपर जब बिजली गिरती है, उस समय उस वृक्षकी जो हालत होती है, वही मेरी भी हो रही है। उस सुरम्य बालाको देखकर मै, मैं न रह गया। मेरा 'मै' मर गया।]

केशवसुतकी काव्य-प्रतिभा इस प्रकार अत्यन्त तेजस्वी और प्रभावशालिनी थी। उन्होंने अपने मित्रको एक पत्र दिनांक ९-२-१९०५ को लिखा था। उसमें वे लिखते हैं—'कविता आकाशकी विद्युत् है। उसे पकड़नेवाले १०० मे से ९९ स्वय दग्ध हो जाते है। मै उनमेसे एक हूँ।' इस वाक्यसे और 'मेरा अन्त' कवितासे स्पष्ट हो जाएगा कि लौकिक केशवसुतका अवसान प्रमादिनी प्रतिभामें हो गया है और काव्यात्मक केशवसुत भृंग, तितली (फूलपांखरूं), पुष्प आदिके साथ अलौकिक और दिव्य वार्त्तालाप कर रहे है।

जो असामान्य है, अलौकिक है, दिव्य है, परतत्वस्पर्शी है, उसीपर 'केशवसुत का मन लुब्ध हुआ है। लौकिक और व्यावहारिक विषयोंकी ओर उनका मन नहीं दौड़ता। फूलोंपर बैठनेवाला मधुकर उनका मित्र है। अपनी 'भृंग' कवितामें वे मधुकरसे कहते है :—

भृंगा ! दंग अहा ! होसी, गुंगत धाव वनीं घेसी।
तुज मागुनि वाटे यावें, गोड फुलें चुंबित गावें।
कविच्या हृदयीं उज्ज्वलता, आणिक मिळती अंधुकता॥
भृंगा ! आणि तुझे गान, सृष्टीचें गमते कवन।
गा ! तूं गा ! नादी भ्रमरा। मी गणमात्रा जुळणारा॥
परंतु भृंगा ! तव गान। परमानंदे परिपूर्ण।
अस्मदीय हृदयीं ठरलें। कीं जग हें दुःखें भरलें।
म्हणुनी सुंदरतेला ही। कुसें आम्हां दिसतीं पाही।
प्रीति, चारुता, आनंद। यांचे गा मधुरच्छन्द॥

—'भृंग'

[हे भ्रमर ! तू तो अपनेमें ही डूबा हुआ है, अपनी ही मस्तीमें काननकी ओर दौड़ा चला जा रहा है ! मेरी इच्छा होती है कि मैं भी तेरे पीछे-पीछे आऊँ और मधुर फूलोंको चूमते हुए गाऊँ। कविके हृदयमें प्रकाश भरा रहता है, पर उसमें कभी-कभी धुँधलका भी चला आता है। लेकिन हे भ्रमर, तेरा गीत तो प्रकृतिका काव्य है। अपने धुनमें मस्त भ्रमर, तू गाते चल, गाते चल। मैं तो सिर्फ गणों और मात्राओंको जोड़नेवाला क्षुद्र कवि हूँ। भ्रमर, तेरा गीत परमानन्दसे परिपूर्ण है। मेरे हृदयमें यह बात पक्की जम गई है कि यह दुनिया सिर्फ दुखोंसे भरी हुई है, इसीलिए हमें सुन्दरतामें भी काँटे दिखाई देते है। हे भ्रमर, तू प्रीति, चारुता और आनन्दके गीत गाए जा।]

इसी प्रकार केशवसुत अपनी 'पुष्पाप्रत' कवितामें पुष्पके साथ अपना नाता जोड़ते है :—

पुष्पा, सुंदर किती तूं दिससी ! सौकुमार्य माधुर्यहि धरसी।
तुजला बघतां मन माझें तूं वेडें रे करिसी।
तूं आणिक मी पूर्वी होतों, खेळगडो रे ? स्मरुनि अहा तो !
काळ सुखाचा, आतां चित्ता खेद फार होतो !
सौकुमार्य तव अजुनी आहे। हंसतचि आहे हास्य तुझें हें।
परि मम भाळीं ढग अश्रूंचा—हाय ! डवरला हे !
आतांहि गमें घ्यावें तुजला, परी सुटतसे कंप कराला।
दिव्यत्वाला स्पर्श कराया—भय वाटे मजला।

चिरतरुणा रे ! चिररुचिरा रे ! तुज सन्निध तो वास बरा रे !
तुजमजमध्ये परी केव्हढी—आहे तंद दरा रे ।
काळोखाच्या जगामध्ये या । मृत आशांच्या चितांवरुनि या
पिशाच्य माझें भटकत आहे । शांति नसेचि तया ।

—"पुष्पाप्रत"

[पुष्प, तू कितना सुन्दर है, कितना सुकुमार और मधुर है, तू मुझे पागल बना देता है। कभी तू और मैं एक साथ खेला करते थे। जब उस सुखकी मुझे याद आती है, तो मेरे चित्तमें खेद उत्पन्न होता है। वे सुखके दिन चले गए। पुष्प तेरी सुकुमारता अब भी वैसी ही है,तेरा हास्य अभी भी हँस रहा है। लेकिन हाय, मेरे भालपर अश्रुओंके मेघ घिर आए है। अब भी मन चाहता है कि तेरा स्पर्श करूँ, लेकिन हाथ काँपने लगते हैं। दिव्यत्वको स्पर्श करते समय मुझे डर लगता है। तू चिर-तरुण, चिर-सुन्दर है और मैं? तुझमें और मुझमें कितना अन्तर है? अन्धकारकी इस दुनियामें मेरा भूत मृत आशाओंकी चिताओंपर भटक रहा है। उसे शान्ति नहीं मिलती।....मुझे तेरा सहवास मिलता रहे, यही क्या कम है?]

केशवसुतके हृदयमें सदैव एक तड़प थी। वे दिव्य तथा अलौकिकके स्पर्शके लिए बेचैन थे। लौकिक विषयोंपर वे कभी नहीं रीझे। मान, सम्मान, अर्थप्राप्ति, ऐहिक वैभव उनके लिए ये सब नगण्य बातें थीं। इस दुनियामें उनकी जो एक महत्वाकांक्षा थी, उसका बड़ा ही रोचक चित्र उन्होंने अपनी 'एक खेडें' कवितामें खींचा है।

"नदीके किनारे एक छोटा देहात है। वहाँ सुन्दर महल नहीं हैं, छोटी-सी झोपड़ी है। भगवान मन्दिरमें नहीं रहते, उनका निवास-स्थान तो प्राकृतिक सौन्दर्यमें है। इस देहातमें जीवन-स्रोत सरल और शान्त रूपसे प्रवाहित होता है। यहाँके निवासी सुखी और सन्तुष्ट दीख पड़ते है।"

केशवसुत इसी प्रकारके देहातमे रहना चाहते थे। उसमें बस उनका एक खेत हो तथा एक झोपड़ी रहे। उनका मन सादे जीवनकी ओर दौड़ा करता था।

देहधारी 'केशवसुत' घरमे, पाठशालामें और सांसारिकतामें उलझे हुए दिखाई देते थे, लेकिन उनकी काव्यात्मा चिर-मिलनके लिए सदैव तड़पा करती थी। वह त्रिखण्डोंमे भटका करती थी, जो श्रेयस खो गया है, उसको ढूंढ़ते हुए। 'हरपलें श्रेय' (श्रेय, जो खो गया है) नामक एक कवितामें वे कहते है :—

"त्रिखंड हिंडुनि धुडितसें, न परि हरपलें तें गवसें ।
होत्यें अजाण माझेरों । तों खेळ खेळल्यें परोपरी ।
तेव्हांचें सुख तें आतां । खऱ्या घरीं ही नये हातां ।
या वचने चुकला सौदा । उमगुनि हृदया दे खेदा ।

दिलें हिरण्मय, हातीं मृण्मय, हा हतविनिमय ।
परत मला मम मिळतें कसें ? न परि हरपलें तें गवसें ।
जेथें ओढे वनराजी । वृत्ति रमें तेथें माझी ।
कारण कांहीं सांग तिथे । मम त्या श्रेयाची पटते ।

[मैं त्रिखण्डोंमें घूमते हुए ढूंढ़ रही हूँ । लेकिन जो खो गया है, वह नहीं मिलता । मैं अपने पीहरमें भोली-भाली अनजान थी, वहाँ कई तरहके खेल खेला करती थी । उस समयका वह सुख अब इस वास्तविक संसारमें नसीब नहीं होता । यह बात मनको सालती है कि यह सौदा घाटेका हो गया है, और मैंने हिरण्मय (सुवर्णमय) को मृण्मय (मिट्टीके पदार्थ) से बदल लिया है । हाय रे बदनसीब विनिमय ! मेरा जो चला गया है, वह मुझे कैसे वापस मिले ? बहुत कोशिश की, पर जो खो गया था, वह नहीं मिला । जहाँ झरने हैं और वनोंका वैभव है, वहाँ मेरा चित्त रम जाता है । कारण जिस श्रेयससे मैं वंचित हो गई हूँ, उसका आभास मुझे वहाँ दिखाई देता है ।]

जो अमर्यादित है, उससे मिलनेके लिए, मिलनकी उस अवस्थाकी अनुभूति के लिए, उनका मन सदा ही उत्कण्ठित रहा करता था । एक दिन सितारके सुरोंने उन्हें बेचैन बना दिया । उनके उदास और कोमल मनपर उस संगीतका बड़ा ही विचित्र असर पड़ा । उन सुरोंने उन्हें रोमांचित कर दिया । उनकी आँखोंमें अश्रु छलक आए । उन सुरोंसे उन्हें एक सन्देश मिला—'तम अल्प, द्युति बहु ।' उस वाद्यसे जो उदात्त स्वर निकले, उनसे कविका व्यक्तिगत मन विश्वव्यापी बन गया, बन्धन टूट गए, उद्गम और विलय, आदि और अन्त आदि भेदोंके परे वह भ्रमण करने लगा—स्वर्ग और धराका मिलन हो गया ।

उनकी 'झपूर्झा' कविता मराठीमें सर्वोत्तम मानी जाती है । महाराष्ट्रमें लड़कियाँ 'झिम्मा' नामका खेल खेलती है । उसमें वे चक्राकार घूमती हैं । घूमते समय वे एक दूसरीके हाथपर ताली देकर कहती हैं, 'जा पोरी जा' (जा, छोरी जा)। जैसे उनके चक्रोंकी गति बढ़ती जाती है, यह 'जा पोरी जा', 'झापूर्झा' बन जाता है । तेज चक्राकार गतिमें घूमती हुई लड़कियोंको जो आनन्द मिलता है, उससे सौ गुना आनन्द केशवसुतको 'झापूर्झा' में प्राप्त हुआ है । इस स्वानन्दका वर्णन भी क्या कभी किया जा सकता है ? उनके मनकी स्थिति हर्ष-खेद, अश्रु-हास्यके परे हो गई है । प्रकाश और तिमिरके परे जो और एक स्थिति होती है, उसमें वे पहुँच गए हैं । इस स्थितिका नाम क्या है ? कवि कहता है, 'झपूर्झा' 'झपूर्झा' ! वहाँ शूल गायब हो जाते हैं । जो इस कविताको बाह्य-विषयकी दृष्टिसे ही देखते हैं, वे कविकी मजाक उड़ाते हैं । पर उन्हें हँसने दो । कविको तो व्यर्थमें भी अर्थ दीख पड़ता है । उस अर्थको कवि ही समझ सकता है । कवि-मनकी अनूठी तन्मयता और उल्लसित वृत्तिकी अभिव्यक्ति 'झपूर्झा' में हुई है ।

हम देखते है, 'केशवसुत' का कवि-मन एक ओर एक अलौकिक सत्तासे मिलनेके लिए व्याकुल था, लेकिन दूसरी तरफ यही मन सामाजिक जागरणके लिए भी चौकन्ना था। 'केशवसुत' ने कविकी शक्तिका इस दृष्टिसे भी अनेक बार बखान किया था। एक कवितामे वे कहते है, कि महाकवि धूमकेतुकी तरह क्रान्तिका भविष्य बनाते है। इनकी 'स्फूर्ति' नामक कवितामें कविके इस सामर्थ्यपर अच्छा प्रकाश डाला गया है। उनका कहना है कि जो पुराना है, रुढ़ियोंसे बद्ध है, उसके साथ युद्ध करनेकी शक्ति निस्सन्देह कविमे है। देव हो या दानव हो, जो भी हमारा रास्ता रोकें, उनके साथ संघर्ष करना हमारा कर्तव्य है, क्योंकि देव और दानव मानवकी ही सृष्टि है। जो दानव है, अत्याचारी है, उनका तो सामना करना ही चाहिए। लेकिन देवता, धर्म और संस्कारोंके नामपर यदि हमारी प्रगति रोकना चाहते है, तो उनका भी मुकाबला करना चाहिए।

आडवतील जरी देव तरी, झगडूं त्यांच्याशीं निकरीं,
हार न खाऊं रतीभरी।
देव दानवा नरें निर्मिलें, हे मत लोकां कळवूं द्या।

आगे वे कहते है :—

पद्य पंक्तिची तरफ आमुच्या करीं विधीनें दिली असे
टेंकुनि ती जनता शीर्षावरि जग उलथुन या देऊं कसे!

('स्फूर्ति')

[लोगोंके सिरोंपर अन्याय, अत्याचार, कुसंस्कार एवं अन्धरूढ़ियोंका पहाड़-रूपी संसार लदा हुआ है। भगवानने कवियोके हाथमें पद्य-पंक्तिके रूपमें उत्तोलन-दण्ड दिया है। इस उत्तोलन-दण्ड (लीवर) को जनताके सिरपर रखकर—कविताके द्वारा उनमें जागृति पैदा कर—आओ, हम उस (सड़े हुए) संसारको उलट दें।]

वे मानते है कि समाजके परिवर्तनमे कविका महान योगदान है। 'मूर्ति भंजन' कवितामे केशवसुतने अपने समाज-सुधारवादी दृष्टिकोणको स्पष्ट रूपसे प्रकट किया है। उसमें कवि कहता है "मूर्तियोंको तोड़ दो, उनके टुकड़े-टुकड़े कर दो, और उनमें जो सम्पत्ति घुसी पड़ी है, उसे मुक्त कर लो। उस मूर्तिपर पूजा-द्रव्योंको और क्यों खराब करते हो?" यहाँ मूर्ति एक परम्परागत रूढ़िका प्रतीक है। उसमे जो प्राणतत्व है, उसका दर्शन करना तथा उस प्राणतत्वको नई परिस्थितिके अनुसार नया रूप देना ही कविका कर्म है।

यह मूर्ति और रूढ़ी एक डायन है, वह युगों-युगोंसे हमें खा रही है। उसको तोड़ना ही हमारा कर्तव्य है। लेकिन मूर्तिके टुकड़ोंको फेंक देना उचित नहीं है। आजके युगकी माँग है कि उन टुकड़ोसे नए कालके अनुरूप नई मूर्तिका निर्माण किया जाए। उनकी 'नवा शिपाई' (नया सिपाही) नामक कवितामें

नए युगका मानवतावादी स्वरूप स्पष्ट रूपसे झलक उठा है। इस कवितामें वे कहते हैं:—

नव्या मनूंतिल नव्या दमाचा शूर शिपाई मी आहें।
कोण मला वठणीला आणूं शकतो तें मी पाहे।
ब्राह्मण नाहीं, हिंदुहि नाहीं, न मी एक पंथाचा।
जिकडे जावें तिकडे माझीं भावंडे आहेत।
सर्वत्र खुणा माझ्या घरच्या मजला दिसताहेत।
कोठेही जा पायाखालीं तृणावृता भू दिसते।
कोठेही जा डोईवरती दिसतें नीलांबर तें!
साऱ्यांत गोजिरीं मुलें
उन्हांत दिसतीं गोड फुलें
बघतां मन हर्ष डुलें।
ती माझी, मी त्यांचा, एकच ओघ आम्हांतुनी वाहे।
पूजीतसे मी कवणाला? तर मी पूजी आपल्याला।
आपल्यामध्यें विश्व पाहूनीं, पूजीं मी विश्वाला।

('नवा शिपाई')

[मैं नए युगका नवजवान बहादुर सिपाही हूँ। कौन मुझसे लोहा ले सकता है, यही मुझे देखना है। न मैं ब्राह्मण हूँ और न हिन्दू हूँ। किसी एक सम्प्रदायका भी मैं नहीं हूँ। मैं कूप-मण्डूक नहीं हूँ। जहाँ मैं जाता हूँ, वहाँ मुझे मेरे भाई-बन्द ही दिखाई देते है। सब जगह मुझे मेरे ही घरके निशान दिखाई पड़ते हैं। कहीं भी जाओ, सर्वत्र एक ही तृणावृता भूमि है और सिरपर एक-सा नीलाम्बर है। हर जगह छायामें खेलते हुए सुन्दर बालक, और खिलखिलाती हुई धूपमें खिले हुए मृदुल पुष्प दिखाई देते हैं। वे मेरे हैं, और मैं उनका हूँ। एक ही जीवन-सत्वका प्रवाह हम सबमें बहता है। उनकी जब मैं स्तुति गाता हूँ तो किसी औरकी पूजा थोड़े ही करता हूँ, मैं अपनी ही पूजा करता हूँ। मैं अपनेमे विश्वको देखता हूँ और इसीलिए विश्वकी पूजा करता हूँ।]

सन १८९८ में कविकी विश्व-बन्धुत्व और समताकी यह भावना अलौकिक नहीं है क्या?

केशवसुतने सत्तर वर्ष पूर्व स्वतन्त्रता, समता और बन्धुत्वका जयघोष मराठी कवितामें किया था। चिपळूणकर, टिळक, आगरकर आदिने जो विचार गद्यमें प्रकट किए थे, उनसे प्रभावित होकर 'केशवसुत' ने आधुनिक मराठी कविताको उन भावोंसे समृद्ध एवं गौरवान्वित किया। राष्ट्र और समाजके उत्थानमें कविका भी अपना एक उत्तरदायित्व है, जनता-जागृतिका कार्य कवि भी कर सकता है,

यह उसका एक पवित्र कर्तव्य है—यही सन्देश है, केशवसुतके राष्ट्रीय काव्यका। अँग्रेजी राज्यकी स्थापनाके बाद भारतीय जनता स्वाभिमान-शून्य बन गई थी। उसको जगाया राष्ट्र-पुरुषोंने। उसमें कविका भी अपना महत्वपूर्ण योग है। जो नया युग आ रहा है, उसमें हरएक व्यक्तिकी अपनी-अपनी जगह है। उसमें न कोई ऊँचा है, और न कोई नीचा। सब मनुष्य एक समान हैं। चार-पाँच शताब्दी पूर्व ही श्री कबीरने यह प्रश्न पूछा था—'एक ब्रह्मसे विश्व रचा है, को बाम्हण, को शूद्रा?' एक परमेश्वरसे सब विश्वकी रचना हुई है। यहाँ कौन श्रेष्ठ है और कौन कनिष्ठ? 'विश्व ही मेरा घर है।'—ज्ञानदेवकी इस अमर उक्तिमें जो प्रेरणा है, उसीका नया अवतार नये युगमें साम्यवाद या विश्व-बन्धुत्वके स्वरूपमें प्रकट हुआ था। और इस नए तत्वकी देखभाल 'केशवसुत' जैसे क्रान्तिकारी कविने की। इसी पार्श्वभूमिमें हमें 'केशवसुत' की काव्य-रचनाको समझना चाहिए।

सन १८८९ में उनकी करुणापूर्ण दृष्टि एक मजदूरपर पड़ी। उन्होंने देखा, दिनभर काम करनेवाला मजदूर भूखा है, अनेक महलोंको बनानेवाला मजदूर बे-घरबारका है। बड़ी व्याकुलतासे वह मजदूर ईश्वरसे पूछता है, "अरे, हम गरीबोंकी ओर क्यों नहीं देखते?"

'केशवसुत' की कलमने एक अन्त्यज बालकके प्रश्नको हमारे सामने उपस्थित किया है। वह बालक पूछता है—"अन्त्यज नीच क्यों माने जाते है?" इस प्रश्नका उत्तर आज तक हमें नहीं मिला। 'केशवसुत' उनको नीच नहीं मानते, क्योंकि उनकी दृष्टिमें—"एक ही जीवन-रस सब मनुष्योंकी नसोंमें प्रवाहित है।"

उस उमय सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक जागृतिका जो एक बड़ा भारी आन्दोलन सर्वश्री महात्मा ज्योतिबा फुले, चिपळूणकर, आगरकर, टिळक आदि महापुरुषों द्वारा महाराष्ट्रमें चलाया जा रहा था, उसकी प्रतिध्वनियाँ 'केशवसुत' के काव्यमें मिलती हैं। 'केशवसुत' ने अपनी 'तुतारी' (तुरही) की आवाजसे सारे महाराष्ट्रको जागृत किया था। उनकी बजाई हुई तुरही आज भी गूँज रही है। आधुनिक मराठी काव्यमें समता, बन्धुत्व, स्वतन्त्रताका सन्देश यही तुरही लाई थी। कविने इस तुरहीको अपनी आत्म-प्रेरणासे बजाया था। उसकी ललकारसे सारा आकाश भर उठा था। उसके सुरोंमें एक प्रकारका जोश था, उत्साह था। उसकी आवाजसे कविने जनताको नवजागृतिकी एक चैतन्यदाई प्रेरणा दी। कविका कथन है कि पुरानी सृष्टिके आधारपर नई सृष्टि बन रही है, पुरानेसे ही नएका जन्म होता है। प्राचीनतासे ही नवीनताका उद्भव होता है। इसलिए नवीनका स्वागत करना हमारा धर्म है। आनेवाला काल विशाल पहाड़के समान है। उसमें सुन्दर और सुशोभित गुफाएँ खोदनेका काम हमारा है। इस पहाड़पर अपने नामोंको चिरस्थाई रूपसे अंकित कर देना हमारा महत्वपूर्ण कर्तव्य है। यह जरूरी है कि

इस नए युगमें समताके ध्वजको ऊँचा रखा जाए। इस युगके नये धर्मका घोष-वाक्य है—"नियमन मानवके लिए है, मानव नियमनके लिए कदापि नहीं।"

यही है 'केशवसुत' के काव्यका सन्देश। जो धर्म पुराना है, संकुचित है, उसके लिए नए युगमें स्थान नहीं है। नए युगका धर्म है—विश्वबन्धुत्व, मानवता। 'केशवसुत' की कवितासे यही प्रेरणा गोविन्दाग्रज, बालकवि आदि अनुगामी कवियोंने ली है। केशवसुतकी अमरवाणी आज भी जीवनदाई और प्रेरणामई है। आज भी केशवसुतका अध्ययन नये युगका अर्थ समझनेके लिए आवश्यक है। 'केशवसुत' का दिया हुआ मानवताका सन्देश अमर है।

कवि गोविन्दाग्रजने 'केशवसुत' के मरनेपर एक कविता लिखी थी, जिसका शीर्षक था :—

केशवसुत कसले मेले ? केशवसुत गातचि बसले।

[केशवसुत कहाँ मरे ? अरे, वह तो गा ही रहे है !]

• • •

कृष्णाजी केशव दामले 'केशवसुत'

[काव्य-सञ्चय]

१. कविता आणि कवि

[श्लोक]

अशी असावी कविता, फिरून
तशी नसावी कविता, म्हणून
सांगावया कोण तुम्ही कवीला
अहांत मोठे ? पुसतों तुम्हांला ।।१।।

युवा जसा तो युवतीस मोहें
तसा कवी हा कवितेस पाहे;
तिला जसा तो करितो विनंती
तसा हिला हा करितो सुवृत्तीं ।।२।।

लाडीगुडी चालव लाडकीशीं
अशा तऱ्हेनें, जरि हें युव्याशीं
कोणी नसे सांगत, थोर गौरवें
कां ते तुम्ही सांगतसां कवीसवें ? ।।३।।

करूनियां काव्य जनांत आणणें,
न मुख्य हा हेतु तदीय मी म्हणें;
करूनि तें दंग मनांत गुंगणें,
तदीय हा सुन्दर हेतु मी म्हणें ।।४।।

सभारुची पाहुनि, अल्प फार
रंगीं नटी नाचवि सूत्रधार;
त्याचें तयाला सुख काय होय ?
तें लोकनिन्दाभयही शिवाय ! ।।५।।

नटीपरी त्या कविता तयाची
जनस्तुती जो हृदयांत याची;
पढीक तीचे परिसूनि बोल
तुम्ही कितीसे भुलुनी डुलाल ? ।।६।।

१. कविता और कवि

कविता ऐसी होनी चाहिए, और वैसी नहीं होनी चाहिए, इस तरह कविको उपदेश देनेवाले, भला तुम कौन हो ? बड़े आए !—मैं तुमसे पूछता हूँ ॥१॥

युवक जैसे युवतीको मोहता है, वैसे कवि भी कविताको आकर्षित करता है। वह जैसे उससे (युवतीसे) अनुनय-विनय करता है, कवि-भी सुछन्दों द्वारा कवितासे प्रणय करता है ॥२॥

कोई भी जाकर युवकसे यह नहीं कहता कि 'तुम अपनी प्रेयसीसे इस तरह लाड़-प्यार करो।' तब फिर तुम ही क्यों इस तरहका रुआब कविपर गाँठते हो ? ॥३॥

मैं कहता हूँ कि काव्यकी रचना कर उसे लोगोंके सामने रखना कविका मुख्य हेतु नहीं होता। वह तो उसे रचकर उसीमें मस्त हो जाता है; उसकी काव्य-रचनाका यही सुन्दर हेतु है ॥४॥

थोड़ा-बहुत लोक-रुचिको ध्यानमें रखकर सूत्रधार नटियोंको सजा-सँवारकर नचाता है, लेकिन उससे उसे क्या सुख मिलता है ? लोक-निन्दाका भय ऊपरसे बना ही रहता है ॥५॥

यदि कवि जन-स्तुति प्राप्त करनेकी इच्छासे कविता करता है, तो उसकी कविता उस नटीके समान है जो रटे हुए वाक्य बोलती है। ऐसी कविताके बोलोंको सुनकर भला बताओ तो तुम कितने आत्म-विस्मृत हो जाओगे, कितने झूमने लगोगे ? ॥६॥

स्वभावभूयिष्ठ जिच्यांत माधुरी,
अशी तुम्हांला कविता रुचे जरी ;
कवीस सोडा कवितेबरोबरी,—
न जाच वाटेस तयाचिया तरी ।।७।।

तयाचिया हो खिडकीचिया, उगे,
खालीं, तुम्ही जाउनि हो रहा उभे,—
तिच्या तयाच्या मग गोड लीला
ऐकूनि, पावाल तुम्ही मुदाला ! ।।८।।

———————

छलकती भाव-मधुर कविता सुननेका अगर शौक हो, तो कविको कविताके साथ स्वच्छन्द विचरने दो। उसके साथ छेड़-छाड़ मत करो, बीचमें दखल मत दो ॥७॥

उसकी खिड़कीके नीचे छिपकर चुपचाप जाकर खड़े हो जाओ। कवि और कविताके बीचमें जो रंगरेलियाँ चल रही हैं, उन्हें देख-सुनकर तुम प्रमुदित हो जाओगे ॥८॥

———

२. आम्ही कोण ?

[शार्दूलविक्रीडित]

आम्ही कोण म्हणूनि काय पुससी ?—आम्ही असूं लाडके—
देवाचे, दिधलें असे जग तयें आम्हांस खेळावया;
विश्वीं या प्रतिभाबलें विचरतों चोहींकडे लीलया.
दिक्कालांतुनि आरपार अमुची दृष्टी पहाया शके ! ।।१।।
सारेही बडिवार येथिल पहा ! आम्हांपुढें ते फिके;
पाणिस्पर्शच आमुचा शकतसे वस्तूप्रती द्यावया—
सौन्दर्यातिशया, अशी वसतसे जादू करांमाजि या;
फोलें पाखडितां तुम्ही, निवडितों तें सत्त्व आम्ही निकें ! ।।२।।
शून्यामाजि वसाहती वसविल्या कोणीं सुरांच्या बरें ?
पृथ्वीला सुरलोकसाम्य झटती आणावया कोण ते ?
ते आम्हीच सुधा कृतींमधुनिया ज्यांच्या सदा पाझरे;
ते आम्हीच शरण्य मंगल तुम्हां ज्यांपासुनी लाभतें ! ।।३।।
आम्हांला वगळा—गतप्रभ क्षणीं होतील तारांगणें;
आम्हांला वगळा—विकेल कवडीमोलावरी हें जिणें ! ।।४।।

———

२. हम कौन ?

हम कौन ? क्या पूछते हो ?—हम हैं दुलारे भगवानके ! उसने यह जग हमें खेलनेके लिए दिया है । इसमें हम प्रतिभाके बलपर सब ओर सहज विचरते रहते हैं, दिक्कालको भेदकर हमारी दृष्टि आरपार देख सकती है ।।१।।

देखो, यहाँकी सारी टीम-टाम, सारा ठाट-बाट हमारे सामने फीका है । हमारे हाथोंमें ग़ज़बका जादू है । उसके स्पर्शसे वस्तुको सौन्दर्यातिशयता प्राप्त हो जाती है। असार भूसीको तुम पछोरते-फटकते रहो, उत्तम सार-सत्त्वांशको तो हम ही चुनते हैं ।।२।।

शून्यमें देवताओंके उपनिवेश भला किसने बसाए ? धरती देवताओंके स्वर्ग-सी बन जाए—इसके लिए कौन प्रयत्न कर रहा है ? हम ही वे हैं कि जिनकी रचनाओंसे निरन्तर अमृत झरता रहता है । हम ही वे हैं कि जिनसे तुम्हें आश्रय और मंगलका महालाभ होता है ।।३।।

हमें हटा दो और देखो, यह ताराओंसे भरा आकाश निष्प्रभ हो जाएगा । बिना हमारे, यह जिन्दगी दो-कौड़ीकी हो जाएगी ।।४।।

---

३. क्षणांत नाहींसे होणारे दिव्य भास

● ● ●

[शार्दूलविक्रीडित]

आत्माराम सुखें वनामधुनि तो होता जरा हिंडत
तों झाला बघता दुरूनि सहसा कोण्या सुमूर्तिप्रत;
तीच्यामागुनि मोहुनि हळुहळु जायास तो लागला,
"आहे ही पण कोण ?" या क्षणभरी प्रश्नावरी थांबला ॥१॥

"रम्भे!" "उर्वशि गे!"—तशींच दुसरीं जीं त्यास होतीं प्रियें
नामें, त्यांतील घेउनी फिरुनि तो बाही त्वरेनें तिये;
ती कांहीं तरिही वळे न, बघुनी तो विस्मया पावला;
जातां सन्निध, "ही नवीनचि अहा! कोणी दिसे" बोलला ! ॥२॥

कांहीं नांव नवीन देउनि तिला जेव्हां तयें बाहिलें,
तों तीनें वळुनी प्रसन्न वदनें त्याच्याकडे पाहिलें;
त्या रूपद्युतिनें दिपूनि नयनें निर्वाण तो पावला,
तों अन्तर्हित, दृष्टिचा विषय तो, एका क्षणीं जाहला ! ॥३॥

आकाची इतुक्यांत हांक परिसे आत्मा, घराला वळे;
आकाच्या हुकुमांत, साक्ष अवघी ती विस्मरूनी, रुळे;
कोणेका दिवशीं तिथेंच फिरतां ती गोष्ट त्याला स्मरे,
तच्चिंतीं, पण रूप नाम अथवा तीचें मुळींही नुरे ! ॥४॥

आत्माराम सखेद होउनि वदे तो आपणाशीं असें—
"कांहीं सुन्दर देखिलें खचित मीं, यामाजि शंका नसे !
हा! हा!—हे जर सर्व भास धरतां येतील मातें, तर
पृथ्वीचा सुरलोक कीं बनवुनी टाकीन मी सत्वर !" ॥५॥

३. क्षणभंगुर दिव्य आभास

[कवि, चित्रकार तथा गायकोंको जो अलौकिक स्वप्न, दिव्य आकृतियाँ, गन्धर्व-स्वर दिखाई-सुनाई देते हैं, उनमेंसे सिर्फ कितने थोड़ोंको वे अपनी कलामें अभिव्यक्त कर पाते हैं! इस कवितामें आत्माराम[1] और आका[2] कौन हैं, बतानेकी आवश्यकता नहीं है।]

आत्माराम अपनी मस्तीमें जंगलमें घूम रहा था कि अचानक दूरसे उसे एक सुन्दर आकृति दिखाई दी। मुग्ध होकर वह उसके पीछे-पीछे धीरे-धीरे जाने लगा। 'लेकिन यह कौन है?' यह सोचकर वह क्षण भरके लिए रुक गया ॥१॥

"ए रम्भे! अरी ओ उर्वशी!" आदि-आदि नामोंसे उसने उसे पुकारा। जो-जो भी नाम उसे बहुत अच्छे लगते थे, उन्हें ले-लेकर वह उसे आवेग-आवेशमें पुकारता रहा, लेकिन उसने जब एक बार भी मुड़कर नहीं देखा, तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। नजदीक पहुँचनेपर वह बोल उठा, "अरे! यह तो कोई नई, अनूठी ही है!" ॥२॥

एक नया ही नाम लेकर जब उसने उसे पुकारा, तब उस (रमणी) ने मुड़कर प्रसन्नतासे उसकी ओर देखा। उसकी रूप-द्युतिसे उसकी आँखें चौंधिया गईं और उसका हृदय सायुज्य-सुखकी अनुभूतिसे परिपूर्ण हो गया। क्षण भरके लिए वह जो दृष्टिका विषय थी, अन्तर्हित हो गई ॥३॥

इतनेमें आत्मारामने 'आका' (बड़ी बहन) का पुकारना सुना और वह घरकी तरफ मुड़ गया। आकाके नियन्त्रणमें वह उस दिव्य साक्षात्कारको पूरी तरहसे भुला बैठा और पूर्ववत् बरतने लगा। किसी दिन जब वह आत्माराम घूमता-घामता फिर उसी स्थानपर पहुँचा, तब वह बात उसे फिरसे याद आई; पर बार-बार कोशिश करनेपर भी उस दिव्याकृति का न तो उसे नाम याद आया और न रूप ही ॥४॥

आत्माराम दुखी हो अपने आपसे कहने लगा—"इसमें कोई शक नहीं कि मैंने कुछ सुन्दर जरूर देखा था। आह! ऐसे सब सुन्दर आभास यदि मैं पकड़ सकूँ, तो इसमें सन्देह नहीं कि इस पृथ्वीको बड़ी जल्दी स्वर्गलोकमें बदल दूँगा।" ॥५॥

१. आत्माराम—स्वच्छन्द, मस्त कविकी प्रतिभावान आत्मा।
२ आका—नीरस व्यावहारिक दृष्टि, व्यवहारवादी।

४. सृष्टि, तत्त्व, आणि दिव्यदृष्टि

[शार्दूलविक्रीडित]

तारा निष्प्रभ जाहल्या निजपथीं, प्राची दिशा रंगली,
गायाला खग लागले, मधुर निश्वासूं फुलें लागलीं,
प्रावारून उषा तुषारपटला सूर्यप्रतीक्षा करी; —
होतों पाहत डोंगरीवरि उभा मोहूनि मी अन्तरीं ।।१।।

'पश्यात्रास्मि' म्हणोनि एक घुमला गम्भीर तेथें ध्वनि,
'भो! कुत्रासि?' विचारिलें निजमुखें तेव्हां तयालागुनी,
'कुत्राप्यस्मि च सर्ववस्तुषु' असें ये तेधवां उत्तर;
तें ऐकूनि जरा करीत मनना मी ठाकलों नन्तर ।।२।।

धोंडा एक समीप हो पडुनियां होता तिथें, त्यावरी
गेली दृष्टि मदीय, कौतुक तधीं झालें मनाभीतरीं,
कांकीं त्या ध्वनिचें खरेंपण मला धोंड्यांत त्या भासलें;
काढूं बाहिर तें झटूनि, मग हें चित्तांत मीं घेतलें ।।३।।

टांकीचे, म्हणुनी, तयावरि जधीं आघात मीं वोपिले,
तों—सांगूं म्हणुनी किती मज मनीं आश्चर्य जें जाहलें! —
मूर्ति दिव्य अशी अहा! उतरली धोंड्यामधूनी भली!
माझी दृष्टि असे अलौकिक, मला जाणीव ही जाहली ।।४।।

---

४. सृष्टि, तत्व और दिव्य दृष्टि

अपने पथपर तारिकाएँ निष्प्रभ हुई। पूर्व दिशामें लालिमा छा गई। पंछी गाने लगे। फूल मधुरतासे महकने लगे। उषा तुषार पटलको ओढ़कर सूर्यनारायणकी प्रतीक्षा करने लगी। मन्त्र-मुग्ध होकर टीलेपरसे मैं उस दृश्यको देख रहा था ॥१॥

'देखो, मैं यहाँ हूँ।'—एक गम्भीर ध्वनि वहाँ गूँज उठी। 'अजी,तुम कहाँ हो?'—मैंने खुद ही उससे पूछा। 'कुत्राप्यस्मि च सर्ववस्तुषु—जहाँ देखो वहाँ मैं हूँ; मैं कण-कणमें व्याप्त हूँ। मैं कहाँ नहीं हूँ? मैं सब वस्तुओंमें हूँ'—मुझे प्रत्युत्तर मिला। इतना सुनकर मनन करते हुए मैं वहाँ ठहर गया॥२॥

वहीं पासमें एक पत्थर पड़ा हुआ था। मेरी नजर उसपर गई। मन-ही-मनमें एक कौतुक पैदा हुआ। कारण, उस गम्भीर ध्वनिकी सचाई मुझे उस पत्थरमें आभासित हो रही थी। मनने निश्चय किया कि पत्थरकी उस सुप्त दिव्यताको प्रयत्नपूर्वक मूर्त रूप दे दूँ॥३॥

मैंने छेनी-हथौड़ी उठाई और उसे तराशना आरम्भ कर दिया। एक दिव्य मूर्ति उस पत्थरमेंसे उभर उठी। क्या बताऊँ, यह देखकर मुझे कितना आश्चर्य हुआ! तब मुझे इस बातका ज्ञान हुआ कि मेरी दृष्टि अलौकिक है ॥४॥

५. शब्दांनो, मागुते या !

[स्रग्धरा]

तेजाचे पंख वाऱ्यावरि हलवित ती चालली शब्दपंक्ति,
देव्हारा शारदेचा उचलुनि गगनांतूनि ती नेत होती;
शब्दांहीं चित्तभूमी विकसित हिरवी तों मदीया बघूनी,
देव्हारा माझिया तो उतरुनि हृदयीं स्थापिला गौरवूनी ॥१॥

शब्दांसंगें तदा मीं निजहृदयवनामाजि संचार केला,
तेथें मीं कल्पपुष्पें खुडुनि नमुनि तीं वाहिलीं शारदेला,
शब्दांच्या कूजितानें सहजचि मम हृत्प्रान्त गुंगूनि गेला;
मीं त्या स्वप्नांत गद्यग्रथित जग मुळीं लोटिलें तुच्छतेला ! ॥२॥

रागानें या जगानें अहह ! म्हणुनियां शापिलें या जनाला,
तेणें चिन्ताग्नि माझी हृदयहरितता नाशिता फार झाला;
गाणारे शब्द सारे झडकरि उडनी दूर देशास गेले,
वाग्देवीपीठ येथें परि मम हृदयीं दिव्य तें राहियेलें ॥३॥

वाग्देवी शारदे गे ! फिरवुनि अपुले शब्द पाचार येथें !
साहाय्यावीण त्यांच्या भजन तव कसें सांग साधेल मातें ?
आशामेघालि चिन्तानल अजि विझवूं जाहलीसे तयार,
शब्दांनो ! मागुते या ! बहर मम मनीं नूतन येईल फार ! ॥४॥

———————

५. शब्दो, फिरसे लौट आओ !

अपने प्रकाशके पंखोंको हिलाते हुए हवामें शब्द-पंक्ति उड़ रही थी। वह शारदाके सिंहासनको उठाकर अन्तरालमें उड़ा ले जा रही थी। मेरी चित्त-भूमिको हरियालीसे युक्त, विकसित देखकर शब्द-पंक्तिने उसको नीचे उतारा और मेरे हृदयमें स्थापित कर मुझे गौरवान्वित किया ।।१।।

शब्दोंके साथ तब मैंने अपने हृदय-काननमें सञ्चार किया। वहाँ मैंने कल्पवृक्षके पुष्प तोड़कर वन्दनाके साथ श्री शारदाके चरणोंमें समर्पित किए। शब्दोंके मधुर मादक कूजन-कलरवसे मेरा हृदय-प्रदेश सहज ही में तन्द्रिल हो उठा। उस सपनेमें मैंने गद्य-ग्रथित (नीरस) जगतको तुच्छ मानकर ठुकरा दिया ।।२।।

इसलिए हाय, क्रोधमें आकर उस जगतने मुझे शाप दे दिया। उस शापकी चिन्ताग्निने मेरे हृदयकी हरीतिमाको बहुत कुछ नष्ट कर डाला और गानेवाले सब शब्द झटसे उड़कर दूर देश चले गए। लेकिन मेरे हृदयमें वाग्देवीका वह दिव्य पीठ निश्चित बना रहा ।।३।।

ऐ वाग्देवी श्री शारदे, अपने शब्दोंको लौटाकर फिरसे बुलाओ। बिना उनकी सहायतामे तुम्हारा भजन मुझसे कैसे सम्भव होगा? आशा रूपी मेघ-माला मेरी चिन्ताग्निको बुझाने आज तैयार हो गई है। शब्दो ! लौट आओ। तुम्हारे लौटनेसे मेरे मनमें नई मौर-मञ्जरियोंके गुच्छे खिल उठेंगे ।।४।।

६. दुर्मुखलेला

[शार्दूलविक्रीडित]

माझें शुष्क खरेंच हें मुख गुरो ! आहे, तया पाहुनी
जाती प्रेक्षक सर्वही विरस ते चित्तामधीं होउनी ;——
हें सर्वा उघडें असूनि वदुनी कां तें तुम्हीं दाविलें ?
तेणें भूषण कोणतें मग तुम्हां संप्राप्त तें जाहलें ?।।१।।

" याचें तोंड कुरुप हें विधिवशात् गाईल काव्यें नवीं,
तेणें सर्वहि डोलतील जन हे हर्षे कदाचित् भुवि ! "——
विद्यासंस्कृत त्या तुझ्या, क्षणभरी, मस्तिष्कतन्तूंवरी
येता नम्र विचार हा तुज भला होता किती तो तरी ! ।।२।।

जे मुंग्या म्हणुनी मनीं समजशी या मंडळीभीतरीं,
ते पक्षी उडतील होउनि गुरो ! व्योमीं न जाणों वरी !
राखचीं ढिपळें म्हणोनि दिसतीं जीं, तीं उद्यां या जगा
भस्मीसात् करणार नाहींत, अशी तुम्ही हमी द्याल का ?।।३।।

माझ्या दुर्मुखल्या मुखामधुनि या, चालावयाचा पुढें
आहे सुन्दर तो सदा सरसवाङ्निष्यन्द चोहींकडे !
तुम्हीं नाहिं तरी सुतादि तुमचे धातील तो प्राशुनी !
कोणीही पुसणार नाहिं, ' कवि तो होता कसा आननीं ?'।।४।।

———————

६. दुर्मुख

[कक्षामें किसी शिक्षकके 'दुर्मुख' कहनेपर कविके मनमें उठे हुए विचार]

गुरुदेव! यह एकदम सच है कि मेरा मुँह रूखा-सूखा-सा है, मेरे इस चेहरे-मोहरेको देखकर दर्शक मन-ही-मन नीरसताका अनुभव करते हैं। जब यह बात सबको मालूम थी, तब उसे कहनेकी क्या जरुरत थी। इसमें आपका क्या बड़प्पन हुआ? ।।१।।

'यही कुरूप मुख विधिवशात् नव-नव काव्य-रचनाओंकी सृष्टि करेगा, नए-नए गीत गाएगा, जिनको सुनकर धरतीके लोग आनन्दसे झूमने लगेंगे—' इस तरहके नम्र विचार आपके विद्या-संस्कृत मस्तिष्क-तन्तुओंपर क्षण भरके लिए भी झंकृत हो उठते, तो क्या ही अच्छा होता! ।।२।।

गुरुदेव! आपके ये लड़के, जिनको आप अपने मनमें क्षुद्र चीटियाँ समझते हैं, पता नहीं कब पक्षी बनकर आकाशमें विहार करने लगेंगे! क्या आप निश्चय पूर्वक कह सकते हैं कि जो आज राखकी ढेरियाँ हैं, वे कल संसारको भस्मसात् नहीं कर सकेंगी? ।।३।।

मेरे इस रूखे-सूखे तथा कुरूप मुँहसे आगे चलकर सुन्दर तथा सरस वाग्धारा चतुर्मुख बह निकलनेवाली है। आप न सही, पर आपके पुत्र-पौत्रादिक उस धाराका सेवनकर तृप्त-तुष्ट हो जाएँगे। तब कोई यह नहीं पूछेगा कि उस कविका चेहरा कैसा था! ।।४।।

———————

७. माझा अन्त

[वृत्त-वैचित्र्य]

मीं पाहिली एक सुरम्य बाला;
वर्णूं कसा त्या स्मरसंपदेला ?
वृक्षावरी वीज जधीं पडावी,
त्याच्या स्थितींतचि तिची महती पहावी ।।१।।

माझी अवस्था बघुनीच तीचें
सौंदर्य सोपें अजमावयाचें;
वस्ताद जी चीज जगीं असावी,
तीचें स्वरूप सगळें परिणाम दावी ।।२।।

सौंदर्य पुष्पासम वर्णितात,
झालें मला कंटकसें प्रतीत;
सौंदर्य मानोत सुधानिधान,
तें जाहलें मज परन्तु विषासमान ! ।।३।।

नेत्रें क्षणीं तारवटून गेलीं,
अंगें ज्वरीं त्या परतन्त्र झालीं,
झालों तिला मी बघतां भ्रमिष्ट,
शुद्धि सर्वेचि मग होय अहा ! विनष्ट ।।४।।

माझा असा अन्त अहो जहाला !
'कोठूनियां हा मग येथ आला ! —'
ऐसा तुम्हां संशय येतसे का ?
मी भूत हें मम असें, नच यांत शंका ! ।।५।।

---

७. मेरा अन्त

मैंने किसी एक सुरम्य बालाको देखा। मैं उस स्मर-सम्पदाका किन शब्दोंमें वर्णन करूँ? उस मदन-मञ्जरी को देखकर मेरा जो हाल हुआ, उसे मैं कैसे बताऊँ? पेड़पर बिजली गिरनेके बाद कोई पेड़से उसका हाल पूछे, तो पेड़ क्या बता पाएगा?॥१॥

उसके कारण मेरी जो हालत हुई है,उसे देखकर उसके सौन्दर्यको सरलता से जाना जा सकता है। कैसी भी निगूढ़ वस्तु क्यों न हो, परिणामोंसे उसका स्वरूप मालूम किया जा सकता है॥२॥

सौन्दर्य पुष्पोंके समान है--ऐसा वर्णन किया जाता है; पर मुझे तो उसकी अनुभूति काँटे-सी हो रही है। सौन्दर्यको भले ही कोई सुधा-निधान समझ ले,पर मेरे लिए तो वह विष-सदृश हो गया है॥३॥

उस अलौकिक सौन्दर्यसे मेरी आँखें उसी क्षण फट-सी गईं, अंग-प्रत्यंग (काम)ज्वराक्रान्त हो उठे, उनपरसे मेरा नियन्त्रण उठ गया। उसको देखते ही मैं भ्रमित हो गया और मेरे सारे होश-हवास उड़ गए॥४॥

अहो, इस तरह मेरा अन्त हुआ। तब मुझे देखकर आपके मनमें शंका जागती है न कि यहाँ यह कौन खड़ा है? कहाँसे आया है? पर सन्देहकी जरूरत नहीं; यह मैं नहीं हूँ, मेरा भूत है॥५॥

———

८. एक खेडें

[दिंडी]

सह्यगिरिच्या पायथ्याला सुपीक
रम्य खोरें कोंकणामधीं एक;
नदी त्यामधुनी एक वाहताहे,
एक खेडें तीवरी वसुनि राहे ।।१।।

वरुनि सुन्दर मन्दिरें न त्या ठायीं,
परी साधीं झोंपडीं तिथें पाहीं;
मन्दिरांतुनि नांदते रोगराई,
झोंपडयांतुनि रोग तो कुठुनि राही ? ।।२।।

रोग आहे हा बडा कीं मिजासी,
त्यास गिर्द्यांविरि हवें पडायासी;
झोंपडयांतिल घोंगडयांवरी त्यास,
पडुनि असणें कोठलें सोसण्यास ? ।।३।।

उंच नाहिंत देवळें मुळीं तेथें,
परी डोंगर आहेत मोठमोठे;
देवळीं त्या देवास बळें आणा,
परी राही तो सृष्टिमधें राणा ।।४।।

उंच डोंगर ते, उंच कडे भारी,
पड़े धो ! धो ! ज्यांचियावरुनि वारी,
भोंवतालें रान तें दाट आहे;
अशा ठायीं देव तो स्वयें राहे ! ।।५।।

स्तोत्र ओढे थांबल्यावीण गाती,
सूर वारे आपुला नित्य देती,
वृक्षगण तो हालुनी डुल्लताहे;
अशा भक्तीच्या स्थळीं देव राहे ! ।।६।।

८. एक ग्राम

सह्याद्रि पहाड़की तराईमें, कोंकण प्रदेशमें एक उपजाऊ तथा रमणीक उपत्यका है। उसके बीचमें एक नदी बहती है। उस नदीके किनारे एक देहात बसा हुआ है ।।१।।

वहाँ बाह्य-सुन्दर ऐसे महल नहीं दिखाई देते। हाँ, मामूली झोपड़ियाँ जरूर हैं। महलोंमें बीमारियाँ राज्य करती हैं। झोपड़ियोंमें रोग बेचारा कहाँ रहेगा? ।।२।।

रोग परले सिरेका मिजाजी होता है। उसे लेटनेके लिए गादी-गदैले चाहिए। झोपड़ियोंके कम्बलोंपर सोना उसे सहन नहीं होता ।।३।।

ऊँचे-ऊँचे मन्दिर वहाँ बिलकुल नहीं हैं। हाँ, ऊँचे-ऊँचे पहाड़ जरूर हैं। मन्दिर में तो देवता की प्रतिष्ठा जबरदस्ती करनी पड़ती है; परन्तु वह परमेश्वर प्रकृतिके बीच अपनी मर्जीसे बसा करता है ।।४।।

वे ऊँचे-ऊँचे पहाड़ और उनकी वे खड़ी कगारें, जिनपरसे कि पानी 'धों-धों' करके नीचे गिरता रहता है; चारों ओर घना जंगल है। ऐसी जगहमें भगवान स्वयंमेव आकर निवास किया करते हैं ।।५।।

जहाँ झरने निरन्तर स्तुति-स्तोत्र गाते रहते हैं और हवा नित्य सुर भरा करती है, तथा वृक्ष मस्त होकर झूमते हैं—ऐसी भक्तिभावसे परिपूर्ण जगहपर भला भगवान कैसे निवास न करें? ।।६।।

अशी नैसर्गिक भव्यता उदास
तया खेडग्याच्या असे आसपास;
तसा खेडग्याचा थाट तोहि साधा
भव्यतेला त्या करितसे न बाधा ।।७।।

सरळ साधेंपण असे निसर्गाचें
मूल आवडतें; कवि तें तयाचें
भव्यतेला आणील बरें बाधा ?
निसर्गाचा थाट ही असे साधा ।।८।।

लहान्या त्या गांवांत झोंपडग्यांत
भले कुणबी लोक ते राहतात;
खपोनियां ते सदा सुखें शेतीं,
सरळ अपुला संसार चालवीती ।।९।।

अहा ! अज्ञात स्थळीं अशा, मातें,
एक गवतारू खोप रहायातें,
शेतवाडी एक तीं खपायाला,
लाधती, तर किती सौख्य मन्मनाला ! ।।१०।।

तरी नसतों मी दरिद्री धनानें,
तरी नसतों मी क्षुद्र शिक्षणानें
तरी होतीं तीं स्वर्गसुखें थोडीं,
तरी नसती कीर्तिची मला चाडी ! ।।११।।

कीर्ति म्हणजे काय हो ?—एक शिंग :
प्रिय प्राणांहीं आपुलिया फुंक,
रखाडीला जा मिळूनियां वेगें;
शिंगनादहि जाईल मरुनि मागें ! ।।१२।।

कीर्ति म्हणजे काय रे ?—एक पीस :
शिरीं लोकांच्या त्यास चढायास,
छरे पडती पक्ष्यास खावयास;
मागुनी तें गळणार हेंहि खास ! ।।१३।।

उस देहातके आस-पास नैसर्गिक भव्यता उदासी लिए हुए, चुप-चाप छाई हुई दिखाई देती है। देहातका रंग-ढंग सादा है, लेकिन उससे इस भव्यतामें कोई बाधा नहीं उपस्थित होती।।७।।

सरलता और सादगी तो प्रकृतिकी लाड़ली सन्तानें ही हैं। भला वे ही उसकी भव्यतामें रुकावट कैसे पैदा करेंगी? प्रकृतिका ठाट भी तो सीधा-सादा ही रहता है न! ।।८।।

छोटेसे उस देहातकी झोपड़ियोंमें सज्जन कुनबी (किसान) रहते हैं। वे खेतोंमें पसीना बहाकर सुखी रहते हैं, और सीधी-सादी अपनी जिंदगी बिताते हैं।।९।।

अहा! ऐसे अज्ञात स्थानमें मुझे घास-फूसकी एकाध कुटिया और खेती-बारीके लिए कुछ जमीन मिल जाती, तो मुझे कितना आनन्द होता! ।।१०।।

यदि ऐसा होता तो मैं धनी होकर भी मनसे दरिद्र नहीं रहता, शिक्षा प्राप्त करनेके बाद भी क्षुद्र नहीं बनता, स्वर्गके सुख मेरे सामने तुच्छ हो जाते और मुझे कीर्तिकी लालसा न सताती! ।।११।।

आखिर कीर्तिका अर्थ क्या है? वह एक तुरही ही है न, जिसमें अपने प्रिय प्राणोंको आवेगके साथ फूंका जाता है? फूंकनेवाला तेजीसे राखकी एक ढेरी बन जाता है और उस तुरहीकी ध्वनि भी कुछ देर बाद हवामें विलीन हो जाती है।।१२।।

अरे भाई, कीर्तिका क्या अर्थ है? वह एक पंख ही तो है; वह लोगोंके सिरोंपर चढ़े इसलिए निःसहाय पक्षीको छुरें खाने पड़ते हैं और बलि होना पड़ता है। इसके उपरान्त भी कीर्ति नश्वर ही है।।१३।।

पुढें माझें चालेल कसें, ऐशी
तेथ चिन्ता त्रासिती न चित्तासी;
नीच लोकांला मला नमायास
वेळ पडती थोडीच त्या स्थळास ! ॥१४॥

शेत नांगरणें पेरणें सुखानें,
फूलझाडें वाडींत शोभवीणें;
गुरें ढोरें मी बाळगुनी कांहीं,
दूध दुभतें ठेवितों घरीं पाहीं ॥१५॥

कधीं येता पाहुणा जर घराला,
'तुझें घर हें' वदतोंच मी तयाला;
गोष्टि त्याच्या दूरच्या ऐकुनीयां,
थक्क होतों मी मनीं तया ठाया— ॥१६॥

"असे जग तें एवढें का अफाट !
त्यांत इतुका का असे थाटमाट !"
असें वदतों मी त्यास विस्मयेंसी,
स्वस्थिती तरि तुळतों न मी जगाशीं ॥१७॥

स्वर्गलोकीं सम्पत्ति फार आहे,
इथें तीचा कोटयंश तोहि नोहे;
म्हणुनि दुःखाने म्हणत 'हाय ! हाय'
भ्रमण अपुलें टाकिते धरा काय ? ॥१८॥

तरी, स्वपथा जातात सोडुनियां,
कुणी तारे तेजस्वी फार व्हाया;
तधीं तेजाचा लोळ दिसे साचा,
परी अग्नी तो त्यांचिया चितेचा ! ॥१९॥

वीरविजयांच्या दिव्य वर्तमानी
कृष्ण कदनें पाहतों न त्या स्थानीं;
भास्कराच्या तेजाळपणीं मातें
डाग काळे दिसते न मुळीं तेथें ! ॥२०॥

आगे मेरा क्या होगा––यह चिन्ता उस देहातमें मनको कभी तंग नहीं करती। अधम लोगोंके आगे सिर झुकानेकी नौबत वहाँ कभी नहीं आती ।।१४।।

खेतको जोतना और उसमें प्रसन्नतापूर्वक बीज बोना तथा फूल-पौधोंसे बगीचेकी शोभा बढ़ाना, यही मेरा काम है। मेरे पास गाय-ढोर हैं और मेरे घरमें दूध, दही आदि भरपूर रहता है ।।१५।।

जब कोई अतिथि घरपर आता है, तो मैं उससे कह देता हूँ कि वह इसे अपना ही घर समझे और आरामसे रहे। जबमैं उसके मुँहसे दूर-सुदूरके समाचार सुनता हूँ, तो मेरा मन आश्चर्यचकित हो जाता है ।।१६।।

मैं विस्मयसे भरकर उससे कह उठता हूँ ––'क्या यह जगत इतना विशाल और विस्तीर्ण है? क्या उसमें इतना ठाट-बाट है?' लेकिन फिर भी, अपनी स्थितिको मैं दुनियासे कभी नहीं तौलता, कारण मैं उसे सर्वश्रेष्ठ समझता हूँ ।।१७।।

स्वर्ग-लोकमें प्रचुर मात्रामें सम्पत्ति है, यहाँ उसका एक करोड़वाँ अंश भी नहीं है––यह सोचकर क्या कभी धरती दुःखसे हाय हाय करती है और अपना घूमना छोड़ देती है ? ।।१८।।

हाँ, कुछ तारे ऐसे होते हैं जो तेजस्वी बननेकी लालसा में अपने पथको छोड़ बैठते हैं। तब आकाशमें तेजकी एक लपक-सी दिखाई देती हैं। वह और कुछ नहीं है, उस तारेकी चिताग्निकी लौ है ।।१९।।

वर्तमानकी दिव्य विजयोंमें जो काले कारनामे छिपे रहते हैं, उस देहातमें वे नहीं दिखाई देते। सूर्यके भव्य प्रकाशमें जो काले-काले दाग वहाँ रहते हैं, वे भी दृष्टिगोचर नहीं होते ।।२०।।

सूर्यचन्द्रादिक दूर इथुनि तारे,
तसें जग हें मानितो अलग सारें;
जसे नेच्छूं त्यावरी चढायास,
इच्छितों नच या जगीं यावयास ! ॥२१॥

तेथ गरजा माझिया लहान्या त्या
सहजगत्या भागुनी सदा जात्या;
म्हणुनि माझें जग असें तेंचि खोरें
सुखी मजला राखितें चिर अहा रे ! ॥२२॥

———————

जैसे सूर्य चन्द्रादिक तारे यहाँसे बहुत दूर होते हैं, वैसे ही दूसरी जो दुनिया है वह भी इस देहातसे बिलकुल अलग और दूर है। मेरी सूर्य-लोक, चन्द्रलोकपर जानेकी जैसी इच्छा नहीं होती, वैसे ही इस देहातको छोड़ उस दूसरी दुनियामें जानेकी भी इच्छा नहीं होती ॥२१॥

इस देहातमें मेरी छोटी-मोटी जरूरतें हमेशा बड़ी आसानीसे पूरी हो जाती हैं, इसलिए यही मेरी सच्ची दुनिया है; यही मुझे निरन्तर सुखी रखती है ॥२२॥

———

९. तुतारी

एक तुतारी द्या मज आणुनी,
फुंकिन मी जी स्वप्राणानें,
भेदुनि टाकिन सगळीं गगनें—
दीर्घ जिच्या त्या किंकाळीनें;
अशी तुतारी द्या मजलागुनि. ॥१॥

अवकाशाच्या ओसाडींतिल
पडसाद मुके जे आजवरी
होतिल ते वाचाल सत्वरी
फुंक मारितां जीला जबरी—
कोण तुतारी ती मज देईल ? ॥२॥

सारंगी, ती सतार सुन्दर
वीणा, बीनहि, मृदंग, बाजा,
सूरहि, सनई, अलगुज माझ्या—
कसचीं हीं हो पडतिल काजा ?
एक तुतारी द्या तर सत्वर. ॥३॥

रूढी जुलूम यांचीं भेसुर
सन्तानें राक्षसी तुम्हांला
फाडुनि खाती, ही हतवेला—
जल्शाची का ? पुसा मनाला !
तुतारिनें ह्या सावध व्हा तर ! ॥४॥

अवडम्बरलीं ढगें कितीतरि,
रविकिरणांचा चूर होतसे,
मोहर सगळा गळुनि जातसे,
कीड पिकांवरि सर्वत्र दिसे !
गाफीलगिरी तरिही जगावरि ! ॥५॥

९. तुरही

मुझे एक तुरही ला दो। मैं उसमें अपने प्राण फूकूँगा और उसके सुदीर्घ स्वरसे सारे आकाशको भेद डालूँगा। मुझे ऐसी ही तुरही ला दो ।।१।।

जिसमें जोरसे फूंक मारनेपर अवकाशके आँगनमें अब तक चुपचाप पड़े हुए प्रतिशब्द भी मुखर हो उठें, ऐसी तुरही मुझे कौन देगा? ।।२।।

सुन्दर सारंगी, सितार, बीन, मृदंग, शहनाई, अलगोजा आदि वाद्य ये सब मेरे किस काम आएँगे? अरे, मुझे तो जल्दीसे एक तुरही दे दो ।।३।।

जब रूढ़ियों तथा जुल्म-जबरदस्तियोंकी भीषण राक्षसी सन्तानें तुम्हें फाड़-फाड़कर खा रही हैं, तब अपने मनसे पूछो—क्या यह कु-समय आनंदोत्सवका है? इस तुरहीकी आवाजसे सावधान हो जाओ! ।।४।।

अरे कितने प्रकारकी घटाओंसे आकाश घिर आया है! रवि-किरणें चूर-चूर हो रही हैं। वृक्षोंकी मौर-मञ्जरियाँ गल-बिखर रही हैं। सब तरफ फसलोंमें कीड़े लगे दिखाई देते हैं; पर फिर भी दुनिया गाफिल है, बेखबर है! ।।५।।

चमत्कार ? 'तें पुराण तेथुनि
सुन्दर, सोज्वळ, गोडें, मोठें ?'
'अलिकडलें तें सगळें खोटें ?'
म्हणती धरुनी ढेरीं पोटें;
धिक्कार अशा मूर्खांलागुनि ! ॥६॥

जुन्या नभीं या ताजे तारक,
जुन्या भूमिवर नवी टवटवी,
जुना समुद्रहि नव रत्नें वी;
जुन्यांतून जी निष्पत्ति नवी—
काय नव्हे ती श्रेयस्कारक ? ॥७॥

जुनें जाउं द्या मरणालागुनि,
जाळुनि किंवा पुरुनी टाका,
सडत न एक्या ठायीं ठाका,
सावध ! ऐका पुढल्या हांका !
खांद्यास चला खांदा भिडवुनि ! ॥८॥

प्राप्तकाल हा विशाल भूधर,
सुन्दर लेणीं तयांत खोदा,
निजनामें त्यांवरती नोंदा
बसुनी कां वाढवितां मेदा ?
विक्रम कांहीं करा, चला तर ! ॥९॥

अटक कशाची बसलां घालुनि ?
पूर्वज वदले त्यां गमलें तें,
ऐका खुशाल सादर चित्तें;
परंतु सरका विशंक पुढते—
निरोप त्यांचा ध्यानीं घेउनि ! ॥१०॥

और 'चमत्कार' क्या है? कुछ मूर्ख अपनी बड़ी-बड़ी तोंदोंको सहलाते हुए कहते हैं—'जो कुछ पुराना है, वही सुन्दर है, उज्ज्वल है, सुमधुर है और भव्य है। और जो कुछ आधुनिक है, वह सब झूठा है, फालतू है।' अरे, ऐसे मूर्खोंको धिक्कार है! ॥६॥

इस पुरातन नभमें ये तारे नए हैं, रोज उगते हैं। इस पुरानी धरतीपर नई शस्य-श्यामलता लहराती है। पुराना सागर नित नए रत्नोंको देता है। पुरानेमेंसे जो नया निष्पन्न होता है, क्या वह श्रेयस्कर नहीं है? ॥७॥

पुरानेको मर जाने दो। उसे जला दो या गाड़ दो; पर उसे एक जगह एकत्र होकर सड़ने मत दो। सावधान! भविष्यकी पुकारें सुनो तथा कन्धे-से-कन्धा मिलाकर आगे बढ़ो ॥८॥

वर्तमान काल एक विशाल पहाड़-सा है। उसमें तुम सुन्दर कलापूर्ण गुफा-विहारोंका निर्माण करो। उनपर अपने नाम अंकित कर दो। हाथपर हाथ धरे बैठकर चर्बी क्यों बढ़ाते हो? बढ़ो, कुछ पराक्रम करो ॥९॥

यह हिचक-अवरोध कहाँसे ले बैठे? पूर्वजोंको परिस्थितिके अनुरूप जो अच्छा लगा, वह उन्होंने कहा। उसे सादर सुन लेनेमें कोई हर्ज नहीं है। लेकिन उनके कहनेका तात्पर्य ध्यानमें रखकर निःशंक होकर आगे बढ़ो ॥१०॥

निसर्ग निर्घृण त्याला मुर्वत——
नाहीं अगदीं पहा कशाची !
कालासह जी क्रीडा त्याची,
ती सकलांला समान जाची——
चुरुनी टाकी प्रचंड पर्वत ! ॥११॥

त्यांशीं भिडुनी, झटुनी झगडत
उठवा अपुले उंच मनोरे,
पुराण पडक्या सदनीं कांरे !
भ्याड बसुनियां रडतां पोरें ?
पुरुषार्थ नव्हे पडणें रखडत ! ॥१२॥

संघशक्तिच्या भुईत खंदक
रुंद पडुनि शें तुकडे झाले,
स्वार्थानपेक्ष जीवीं अपुले
पाहिजेत ते सत्वर भरले;
घ्या त्यांत उडघा तर बेलाशक ! ॥१३॥

धार धरिलिया प्यार जिवावर
रडतिल रडोत, रांडा पोरें,
गतशतकांचीं पापें घोरें——
क्षालायाला तुमचीं रुधिरें——
पाहिजेत रे ! स्त्रैण न व्हा तर ! ॥१४॥

जाऊं बघतें नांव लयाप्रत
तशांत बनलां मऊ मेंढरें,
अहह ! घेरिलें आहे तिमिरें,
परंतु होऊं नका बावरे——
धीराला दे प्रसंग हिंमत ! ॥१५॥

देखो, प्रकृति बड़ी कठोर है। उसमें किसीके प्रति कोई मुरव्वत नहीं है। उसकी कालके साथ जो क्रीड़ा चलती रहती है, वह सबको समान रूपसे तापदायक होती है। वह क्रीड़ा प्रचण्ड पर्वत तकको चूर्ण-चूर्ण कर देती है ।।११।।

प्रकृतिसे लड़कर, प्रयत्नपूर्वक अपनी (विचार रूपी) मीनारोंको ऊँचा उठाओ। क्यों पुराने गिरे मकानोंमें पड़े हो? कायर बनकर बच्चोंके समान क्यों रोते हो? घिसटते रहना पुरुषार्थ नहीं है ।।१२।।

हमारी संगठित शक्तिकी भूमिमें लम्बी-चौड़ी दरारें पड़ गई हैं, और वह सैकड़ों टुकड़ोंमें बँट गई है। आओ, निःस्वार्थ भावसे अपने प्राणों द्वारा उन दरारोंको तुरन्त पाट दो। बिना हिचकके उनमें कूद पड़ो ।।१३।।

जब तुम अपने प्यारे प्राणोंको हथेलीपर लेकर कूद पड़ोगे, तो अबलाओं और बच्चोंमें रोना-पीटना मच जाएगा। तुम उन्हें रोने देना। पिछली सदियोंके जो घोर पाप हैं, उनका प्रक्षालन करनेके लिए तुम्हारे खूनकी जरूरत है। इसलिए कायर मत बनो ।।१४।।

जब एक तरफ तुम्हारा नाम मिट रहा है, तो तुम डरपोक, भेड़-बकरी बने बैठे हो! अरेरे! अन्धकारने तुम्हें घेर लिया है, पर फिर भी तुम्हें पागल नहीं बनना चाहिए। 'हिम्मते मर्दां मददे खुदा।' मर्द वही है जो हिम्मतसे काम लेता है ।।१५।।

धर्माचें माजवूनि डम्बर,
नीतीला आणिती अडथळे,
विसरुनियां हें जातात खुळे :—
नीतीचें पद जेथें न ढळे—
धर्म होतसे तेथेंच स्थिर ।।१६।।

हल्ला करण्या तर दंभावर—तर बंडांवर
शूरांनो ! या, त्वरा करा रे !
समतेचा ध्वज उंच धरा रे !
नीतीची द्वाही पसरा रे !
तुतारिच्या ह्या सुराबरोबर ! ।।१७।।

नियमन मनुजासाठीं, मानव—
नसे नियमनासाठीं जाणा,
प्रगतिस जर तें हाणी टोणा,
झुगारूनि तें देउनि, बाणा
मिरवा निज ओजाचा अभिनव ! ।।१८।।

घातक भलत्या प्रतिबंधांवर
हल्ला नेण्या करा त्वरा रे !
उन्नतिचा ध्वज उंच धरा रे !
वीरांनो ! तर पुढें सरा रे—
आवेशानें गर्जत 'हर हर ! ' ।।१९।।

पूर्वीपासुनि अजुनि सुरासुर
तुंबळ संग्रामाला करिती;
सम्प्रति दानव फार माजती,
देवांवर झेंडा मिरविती !
देवांच्या मदतीस चला तर ! ।।२०।।

——— ——

कुछ लोग धर्म-कर्मका व्यर्थका आडम्बर खड़ाकर न्याय-नीतिके मार्गको अवरुद्ध करते हैं। वे मूर्ख इस बातको भुला देते हैं कि जहाँ न्याय-नीतिसे काम चलता है, वहीं धर्म सुस्थिर रहता है ॥१६॥

तो दम्भपर आक्रमण करनेके लिए, विद्रोहके मार्गपर ऐ बहादुरो, तुरन्त आगे बढ़ो! आओ, जल्दी करो! समताके झण्डेको और ऊँचा उठाओ। तुरहीकी इस ललकारके साथ आगे बढ़ो और न्याय-नीतिके राज्यकी घोषणाको प्रसारित करो ॥१७॥

'नियम मानवके लिए हैं, मानव नियमोंके लिए नहीं।' इस बातको जान लो। आपका यह बाना होना चाहिए कि नियम यदि प्रगतिमें बाधक होता हो, तो उसे हम ठोकरसे उड़ा देंगे। आओ, तुम अपनी इस तेजस्वी और अनूठी आन-बानको गौरवके साथ पूरी करो ॥१८॥

जो बन्धन व्यर्थके हैं और घातक हैं, उनपर चढ़ाई करनेके लिए तुरन्त कटिबद्ध हो जाओ। उन्नतिका झण्डा ऊँचा फहरा दो। वीरो, आगे बढ़े चलो—सावेश 'हर-हर महादेव' की गर्जना करते हुए ॥१९॥

पुरातन कालसे लेकर अब तक देव और दानव तुमुल संग्राममें रत हैं। फिलहाल दानव बहुत ही उन्मत्त हो गए हैं, उन्होंने देवताओंपर झण्डा फहरा दिया है। इसलिए आओ, देवताओंकी मददके लिए तुरन्त चलो ॥२०॥

———

१०. मूर्तिभंजन

[अभंग]

मूर्ति फोडा, धावा ! धावा फोडा मूर्ति,
आंतील सम्पत्ति फस्त करा ! ।।१।।

व्यर्थ पूजाद्रव्यें त्यांस वाहूनियां,
नाकें घांसूनीयां काय लभ्य ? ।।२।।

डोंगरींचें आम्ही द्वाड आडदांड,
आम्हांला ते चाड संपत्तीची ! ।।३।।

कोडें घालूनियां बसली कैदाशीण,
उकलिल्यावीण खाईल ती ! ।।४।।

तिच्या खळीमध्यें नाहीं आम्हां जाणें,
म्हणूनि करणें खटाटोप ।।५।।

मूर्ति फोडूनीयां देऊं जोडूनियां
परी विकूनीयां टाकूं न त्या ! ।।६।।

विकूनि टाकिती तेचि हरामखोर
तेचि खरे चोर आम्ही नव्हों ! ।।७।।

१०. मूर्ति-भञ्जन

तोड़ो, तोड़ो, मूर्तियोंको तोड़ो। दौड़ो, मूर्तियोंको तोड़ो। उनकी (आभ्यन्तरिक, आध्यात्मिक) सम्पत्तिको पचा डालो ।।१।।

मूर्तियोंपर व्यर्थ पूजा-द्रव्य चढ़ानेसे तथा उनके आगे नाक रगड़नेसे क्या लाभ ? ।।२।।

हम पहाड़के रहनेवाले शरारती और उजड्ड जो ठहरे। हम तो माल-टालके ही ग्राहक हैं ।।३।।

हमें पेंचमें पकड़कर यह मूर्ति रूपी डाइन बैठी है, वह हमें कच्चा ही खा जाएगी ।।४।।

उस चुड़ैलके उदरमें हमें नहीं जाना है, इसीलिये यह सब कोशिश है ।।५।।

मूर्तियोंको तोड़कर उन्हें हम फिरसे जोड़ देंगे। पर हम उनको कदापि बेचेंगे नहीं ।।६।।

मूर्तियोंको जो बेच डालते हैं, वे ही हरामखोर हैं। वे ही वास्तवमें चोर हैं, हम नहीं ।।७।।

———————

११. स्फूर्ति

कांठोकांठ भरूं द्या पेला, फेंस भराभर उसळूं द्या !
प्राशन करितां रंग जगाचे क्षणोक्षणीं ते बदलूं द्या !

अमुच्या भाळीं कटकट लिहिली सदैव वटवट करण्याची,
म्हणेल जग आम्हांस मद्यपी, पर्वा कसली मग याची !
जिव्हेचीं बंधनें तर ढिलीं करा तीव्र या पेयानें
यदुष्णतेनें द्यावापृथ्वी द्रवुनि मिसळती वेगानें !
होउनियां मग दंग मनीं,
व्हावें तें आणा ध्यानीं,
गा मग सुचतिल तीं गाणीं;
परिसुनि त्यांचे शब्द, रूढिचे दास झणीं ते खवळूं द्या !
कांठोकांठ भरूं द्या पेला, फेंस भराभर उसळूं द्या ! ॥१॥

सोमाचा रस वेदकाळच्या ऋषिवर्यांनीं उकळीला,
शेष तयाचा द्या तर लौकर पिपासु जे त्या आम्हांला !
औचित्याच्या फोल विवेका ! जा निघ या दुरवस्थेनें
अम्हां घेरिलें म्हणुनी घेतों झिंगुनियां या पानानें !
क्लृप्तीची मग करुनी नौका व्योमसागरावरि जाऊं,
उडुरत्नें या गरिब धरेला तेथुनि फेंकुनियां देऊं !
अडवतील जर देव, तरी
झगडूं त्यांच्याशीं निकरीं,
हार न खाऊं रतीभरी !
देवदानवां नरें निर्मिलें, हें मत लोकां कळवूं द्या !
कांठोकांठ भरूं द्या पेला, फेंस भराभर उसळूं द्या ! ॥२॥

११. स्फूर्ति

प्याला लबालब भरने दो, झागोंको तेजीसे उछलने दो। उसका प्राशन करते समय दुनियाके रंग क्षण-क्षणमें बदलने लगेंगे।

हमारे भाग्यमें हमेशा बक-झक करनेकी किटकिट लिखी है। दुनिया हमें शराबी कहेगी, पर हमें उसकी कोई परवाह नहीं। अरे, जिस तीखे पेयकी गरमीसे धरती और आसमान पिघलकर तेजीसे एक दूसरेमें मिल जाते हैं,उससे अपनी जिह्वाके बन्धनोंको ढीला तो कर लो। और फिर, अपने मनमें लीन, मस्त होकर मनचाही कल्पनाको देखो, और उन्मुक्त होकर जो गीत सूझें, उन्हें गाओ। तुम्हारे गीतोंके बोल सुनकर रूढ़ियोंके दास एकदम उबल उठेंगे। उन्हें उबलने दो। प्याला लबालब भरने दो, झागोंको तेजीसे उछलने दो ॥१॥

वेदकालीन ऋषि-मुनियोंने सोम लताको सिझाकर रस-पान किया था। उसमेंसे जो बचा हुआ है, उसे हम पिपासुओंके लिए फौरन ले आओ। औचित्य सम्बन्धी व्यर्थके विवेक! चल भाग, कहीं दूर चला जा। हमें बुरे दिनोंने घेर लिया है, इसलिए हम पीकर नशेमें झूमना चाहते हैं। उसके बाद हम तरकीबकी नौका बनाकर आकाश-सागरमें जाएँगे और वहाँसे अपनी इस गरीब धरतीके लिए नक्षत्र-मणियोंको तोड़-तोड़कर फेंक देंगे। यदि देवताओंने हमारे इस काममें बाधा पहुँचाई, तो हम उनसे भी लड़ेंगे और तनिक भी हार नहीं खाएँगे। देव और दानव दोनों मनुष्यकी ही सृष्टि हैं—यह तथ्य सब लोगोंको ज्ञात होने दो। प्याला लबालब भरने दो, झागोंको तेजीसे उछलने दो ॥२॥

पद्यपंक्तिची तरफ आमुच्या करीं विधीनें दिली असे,
टेंकुनि ती जनताशीर्षावरि जग उलथुन या देउं कसें !
बंडाचा तो झेंडा उभवुनि धामधूम जिकडे तिकडे—
उडवुनि देउनि जुलुमाचे या करूं पहा तुकडे तुकडे !
'महादेव ! हरहर !' समराचा गर्जत तो वाऱ्यावरती
येउनि घुमतो अमुच्या कर्णीं—'निजती ते ठारचि मरती !'
उठा ! उठा ! बांधा कमरा !
मारा किंवा लढत मरा !
सत्त्वाचा 'उदयोऽस्तु' करा !
छंद फंद उच्छृंखल अमुचे स्तिमित जगाला ढवळूं द्या !
कांठोकांठ भरूं द्या पेला, फेंस भराभर उसळूं द्या ! ॥३॥

पद्य-पंक्तिका उत्तोलक-दण्ड (लिवर) विधाताने हमारे हाथमें दिया है। उसको जनताके सिरपर टिकाकर, उसके बलपर हम उस जनताके सिरपर लदी हुई अन्यायी दुनियाको उठाकर फेंक देंगे। हम बगावतका झण्डा खड़ाकर चारों तरफ बवाल मचा देंगे और अन्याय-अत्याचारकी इस दुनियाको खण्ड-खण्डकर उड़ा देंगे। 'हर हर महादेव!' यह युद्ध-घोष हवामें गरज-तरज रहा है। हमारे कानोंमें यह सीख गूँज रही है कि जो सोता है वह मरता है। इसलिए उठो! उठो! अपनी कमरें कसो! मारो अथवा लड़ते-लड़ते मरो! सत्वके सूरजका उदय होने दो! हमारे (काव्य) छन्द और हमारे शौक उच्छृंखल हैं; उनसे इस जड़, अवरुद्ध संसारको खलबलाने दो। प्याला लबालब भरने दो, झागोंको तेजीसे उछलने दो ॥३॥

———————

१२. नवा शिपाई

नव्या मनूंतिल नव्या दमाचा शूर शिपाई आहें,
कोण मला वठणीला आणूं शकतो तें मी पाहें ! ॥ ध्रुव ॥

ब्राह्मण नाहीं, हिंदुहि नाहीं, न मी एक पंथाचा,
तेच पतित कीं जे आंखडिती प्रदेश साकल्याचा !

खादाड असे माझी भूक,
चतकोरानें मला न सूख;
कूपांतिल मी नच मंडूक;

मळचास माझ्या कुंपण पडणें अगदीं न मला साहे !
कोण मला वठणीला आणूं शकतो तें मी पाहें ! ॥१॥

जिकडे जावें तिकडे माझीं भावंडें आहेत,
सर्वत्र खुणा माझ्या घरच्या मजला दिसताहेत;

कोठेंही जा—पायांखालीं तृणावृता भू दिसते;
कोठेंही जा—डोईवरतें दिसतें नीलांबर तें !

सांवलींत गोजिरीं मुलें,
उन्हांत दिसती गोड फुलें,
बघतां मन हर्षून डुले;

तीं माझीं, मी त्यांचा—एकच ओघ अम्हांतुनि वाहे !
नव्या मनूंतिल नव्या दमाचा शूर शिपाई आहें ! ॥२॥

१२. नया सैनिक

मैं नए युगका, नया दमवाला एक बहादुर सैनिक हूँ। कौन मुझे ठीक कर सकता है, यही मुझे देखना है।

न मैं ब्राह्मण हूँ, न हिन्दू; मैं किसी एक पन्थका नहीं हूँ। वे ही यथार्थमें पतित हैं जो सम्पूर्णताको संकीर्ण बना देते हैं। मेरी भूख बहुत बड़ी है। एक टुकड़ेसे मेरा काम नहीं चलता। मैं कूप-मण्डूक नहीं हूँ कि थोड़ेमें तुष्ट हो जाऊँ। मेरा खेत कूंपसे घिरा रहे, यह मैं बिलकुल नहीं सह सकता। मुझे कौन ठीक कर सकता है, यही मुझे देखना है ।। १ ।।

जहाँ भी मैं जाऊँ, सब जगह मेरे भाई-बन्द हैं। हर कहीं मेरे घरके निशान मुझे दिखाई दे रहे हैं। मैं कहीं भी जाऊँ, पैरोंतले एकसी हरियाली (तृणावृता) धरती (भूमाता) दिखाई देती है। कहीं भी जाऊँ, सिरपर एक-सा नीलाम्बर छाया हुआ है। हर कहीं प्यारे बच्चे छाँहोंमें खेलते हुए मिलते हैं और धूपमें खिलखिलाते हुए मधु-पूर्ण सुमन। उन्हें देखकर मेरा मन आनन्दसे झूमने लगता है। वे मेरे हैं और मैं उनका हूँ—हममें एक ही धारा बहती नजर आती है। मैं नूतन युगका—उत्साहसे भरा एक बहादुर सैनिक हूँ ।। २ ।।

पूजितसें मी कवणाला ?—तर मी पूजीं अपुल्याला,
आपल्यामधें विश्व पाहुनी पूजीं मी विश्वाला;
'मी' हा शब्दच मजला न लगे; संपुष्टीं हे लोक
आणनि तो, निजशिरीं ओढिती अनर्थ भलते देख !
लहान–मोठें मज न कळे,
साधु–अधम हें द्वयहि गळे,
दूर–जवळ हा भाव पळे;
सर्वच मोठें—साधु– जवळ, त्या सकलीं मी भरुनी राहें !
कोण मला वठणीला आणूं शकतो तें मी पाहें ! ॥३॥

हलवा करितां तिळावर जसे कण चढती पाकाचे,
अहंस्फूर्तिच्या केन्द्राभंवतें वेष्टन तेंवि जडाचें;
आंत समचि निर्गुण तिलक, वरी सदृश सगुण तो पाक,
परि अन्यां बोंचाया धरितो कांटे कीं प्रत्येक !
अशी स्थिति ही असे जनीं !
कलह कसा जाइल मिटुनी ?
चिंता वागे हीच मनीं.
शान्तीचें साम्राज्य स्थापूं बघत काळ जो आहे,
प्रेषित त्याचा नव्या दमाचा शूर शिपाई आहें ! ॥४॥

———————

भला, मैं किसकी पूजा करता हूँ ?—मैं तो अपनी ही पूजा करता हूँ। अपने आपमें विश्वको देखकर मैं उस विश्वकी पूजा करता हूँ। 'मैं' सर्वनाम मेरे लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। उस व्यापक और विशाल 'मैं' को ये लोग सम्पुटमें रखकर देखते हैं और व्यर्थके अनर्थ मोल लेते हैं। छोटा-बड़ा भेद मैं नहीं जानता। मेरे सामने साधु-अधमका द्वन्द्व गल-पिघल जाता है, दूर-नजदीकका भाव काफूर हो जाता है। सब बड़े हैं, सब साधु हैं, सब पासमें हैं (कोई दूर नहीं)। उन सबमें 'मैं' परिपूर्ण हूँ। कौन मुझे जीत सकता है, यही मुझे देखना है ! ॥३॥

* तिलका हलवा बनाते समय तिलपर जिस प्रकार चाशनीके पुट-पर-पुट चढ़ते जाते हैं, अहं-स्फूर्तिके आस-पास भी इसी तरह जड़की पुटें चढ़ी होती हैं। तिलगुड़के हलवेमें भीतर निर्गुणके समान तिलका दाना रहता है, और बाहरसे सगुण-सदृश शक्करका पाक लिपटा रहता है। लेकिन ऊपरसे प्रत्येक तिल चुभनेवाले काटोंको धारण कर लेता है। जब संसारमें लोगोंकी यही हालत है, तब कलह कैसे मिटेगा ? यही चिन्ता दिलमें बनी रहती है। जो युग शान्तिका साम्राज्य स्थापित करना चाहता है, मैं उसीका प्रेषित, नवीन उत्साहसे भरा हुआ एक शूर-वीर सैनिक हूँ ॥४॥

---

* **तिलका हलवा**—महाराष्ट्रमें मकर संक्रान्तिके अवसरपर तिलोंको शक्करकी चाशनीमें डालकर एक प्रकारकी मिठाई तैयार की जाती है। इसमें हरएक तिल शक्करके पाकमें लिपट-लिपटकर काँटेदार बन जाता है। इसे 'तिळ-गूळ' भी कहते हैं।

१३. अंत्यजाच्या मुलाचा पहिला प्रश्न

[भुजंगप्रयात]

मुलें अंत्यजांचीं बिचारीं मजेनें
पथाच्या अहो खेळताती कडेनें;
दुरूनी तिथें विप्र डौलांत आला,
वदे काय तो मुग्ध त्या बालकांला :—　　॥१॥

"सरा रे दुरी पोर हो म्हारडग्यांचे !
चला ! खेळ हे मांडले डोंबलाचे !
निघा ! वाट द्या लौकरी ब्राह्मणातें !"
पळालीं मुलें;—कोण राहील तेथें !　　॥२॥

परी एक त्यांतील तैसाचि ठेला ;
उगारी तधीं दुष्ट तो यष्टिकेला ।
म्हणे—"गाढवा ! सांवली ना पडेल !
दुरी हो ! पहा हाच खाऊ मिळेल !"　　॥३॥

तधीं बाळ तोही घराला निघाला,
मनीं आपुल्या या करी चिन्तनाला :—
"जरी त्यावरी सांवली माझि गेली,
तरी काय बाधा असे ठेविलेली ?"　　॥४॥

घरीं जाउनी तेंचि माते विचारी;
वदे तेधवां त्यासि माता बिचारी :—
"अम्ही नीच बा, आणि ते लोक थोर;
तयां पाहतां होईजे नित्य दूर ।"　　॥५॥

सुधें बोलली !—हें परी काय तीतें
कळे कीं जगीं नाडुनीयां परांतें,
म्हणूनी करूनी अधीं घोर पाप,
जनीं गाजवी मानवी स्वप्रताप !　　॥६॥

———————

१३. अछूतके पुत्रका प्रथम प्रश्न

बेचारे अछूतोंके बालक राहके किनारे मजेसे खेल रहे थे। तब वहाँ एक ब्राह्मण (विप्र) अपनी शान (अकड़) में आया और उन भोले-भाले बालकोंसे बोला—॥ १ ॥

"दूर हटो रे महारोंके छोकरो ! यह क्या फालतूका खेल लगाया है? भागो! ब्राह्मणको फौरन रास्ता दो! "—सुनकर सब बच्चे भाग गए। भला वहाँ कौन रहता? ॥ २ ॥

परन्तु उनमेंसे एक वहाँ डटा रहा। उसे देखकर उस दुरभिमानी ब्राह्मणने अपनी लाठी उठाई। ब्राह्मण कहने लगा—"रे गधे! तेरी छाँह पड़ेगी न? चल, दूर हट। नहीं तो, इस लाठीका प्रसाद मिलेगा।" ॥ ३ ॥

तब वह बालक भी अपने घरको चल दिया। वह दिलमें सोचने लगा—"मेरी छाँह यदि इस ब्राह्मणपर पड़ी भी तो भला उसे कौन-सी हानि पहुँचेगी? " ॥ ४ ॥

उसने घर जाकर अपनी माँसे वही सवाल किया। तब उस गरीबनीने कहा—"हम लोग नीच हैं और वे ऊँची जातिके हैं। उनको देखते ही हमेशा तुरन्त हट जाना चाहिए।" ॥ ५ ॥

माताने शुद्ध भावसे यह सब बताया। उसे क्या पता कि दुनियामें लोग किस तरह दूसरोंको धोखा देते रहते हैं। वे स्वयं पहले तो पाप करते हैं, और बादमें समाजमें शेखी बघारते हैं कि वाह, हमने भी क्या बहादुरी की है ॥ ६ ॥

१४. मजुरावर उपासमारीची पाळी

[इंद्रवंशा]

धारेवरी जाउनि देव पोंचला,
हा रंगही मावळतेस साजला,
सर्वत्र ही मौज पहा ! दिसे; परी
माझ्याच कां दुःख भरे बरें उरीं ? ॥१॥

साऱ्या दिनीं आजचिया नसे मुळीं
हातास माझ्या कवडीहि लाभली;
पोटा, करोनी मजुरीस मी भरीं;
कोणीं दिलें आज न काम हो परी ! ॥२॥

हीं मन्दिरें हो खुलतात चांगलीं;
माझ्या वडीलींच न काय बांधिलीं ?
मी मात्र हो आज मरें भुकेमुळें;
श्रीमंत हे नाचति मन्दिरीं भले ! ॥३॥

हेवा तयांचा मजला मुळीं नसे,
जाडी मला भाकर ती पुरे असे;
कष्टांत देवा ! मरण्यास तत्पर,
कां मारिसी हाय ! भुकेमुळें तर ? ॥४॥

सर्वांस देवा ! बघतोसि सारखा,
होतोस कां रे गरिबांस पारखा ?
कांहींस सुग्रास सदन्न तूं दिलें,
साधी अम्हां भाकरही न कां मिळे ? ॥५॥

१४. मजदूरपर भुखमरीकी नौबत

देव (सूर्य नारायण) किनारे (क्षितिजकी काली रेखा) पर जा पहुँचा। उसके डूबनेका यह रंग भी पश्चिमाचलको शोभा दे रहा है। चारों ओर आनन्द छा गया है। पर, मेरा ही हृदय भला दुःखसे क्यों भरा है? ॥ १ ॥

आज दिन भरमें एक कौड़ी भी हाथ नहीं लगी। मजदूरी करके अपना पेट पालता रहता हूँ। दुर्भाग्य है कि आज कुछ भी काम नहीं मिला ॥ २ ॥

ये महल क्या ही शोभायमान दिखाई दे रहे हैं! मेरे पूर्वजोंने ही तो इनका निर्माण किया था। लेकिन मैं आज यहाँ भूखके मारे तड़प रहा हूँ और धनी-मानी लोग इन महलोंमें मनमानी मौज उड़ा रहे हैं॥ ३ ॥

उन धनियोंसे मुझे कोई ईर्ष्या-द्वेष नहीं है। अपनी रूखी-सूखीमें मैं खुश हूँ। इसी तरह मेहनत-मजदूरी करते-करते जब मैं मरनेके लिए तैयार हूँ, तब हे भगवन! तू मुझे भूखसे तड़पाकर क्यों मारता है? ॥ ४ ॥

अरे भगवन! तू तो समदर्शी कहलाता है। तब फिर गरीब बेचारोंकी ओरसे ही क्यों अपना मुँह फेर लेता है? कुछको तो तू बढ़िया-बढ़िया माल देता है और हमें रूखी-सूखी रोटी तक उपलब्ध नहीं! ॥ ५ ॥

घेवोनि चारा अपुल्या पिलांप्रती
जाती अहा ! पक्षि सुखी घरीं किती;
बाळांस हें दावुनि कारभारिण
कैसें तयां देत असेल सांगुन —— ॥६॥

" पक्षी जसे हे घरटयास चालती
घेवोनि चारा अपुल्या पिलांप्रती,
घेवोनि अन्ना, तुमचा तसा पिता
येईल तो लौकरि हो, रडूं नका ! " ॥७॥

हे लाडके ! आणिक लाडक्यांनो !
दावूं तुम्हां तोंड कसें फिरोन ?
जन्मास मी काय म्हणोनि आलों ?
येतांच वा कां न मरोनि गेलों ? ॥८॥

———

अपने बच्चोंके लिए मुँहमें चारा दबाए पंछी कितने सुखी होकर जा रहे हैं? मेरी गृहिणी उन्हें दिखाकर बच्चोंसे कह रही होगी—॥ ६ ॥

"देखो, जैसे ये पंछी अपने बच्चोंके लिए मुँहमें चारा दबाए अपने-अपने घोंसलोंको जा रहे हैं, वैसे ही तुम्हारे पिता भी अन्न लेकर शीघ्र ही लौटते होंगे। तुम रोओ मत!" ॥ ७ ॥

हे प्रिये, और मेरे प्यारे बच्चो, मैं तुम्हें कैसे मुँह दिखाऊँ? अरे, मेरा जन्म ही क्यों हुआ? मैं पैदा होते ही क्यों न मर गया?॥ ८ ॥

———————

१५. दंवाचे थेंब

"कोठुनि हे आले येथें ?
काल संध्याकाळीं नव्हते !—"
हिमकण पाहुनि ते वेलीं—
वरि पडले आज सकाळीं ।।१।।

आईला बाळचा वदला
कुतुकानें उत्सुकलेला—
"दिसती हे गोजिरवाणें
मोत्यांचे जैसे दाणे ! ।।२।।

आई ग ! तर वद मातें
कोठुनि हे आले येथें ?
सूर्याच्या ह्या किरणांत
कसे पहा चकमकतात ! ।।३।।

मौज मला भारी वाटे !
होते हे तर वद कोठें ?"
चुम्बुनियां त्या तनयातें
वर करुनी बोट वदे ते— ।।४।

"चन्द्र आणि नक्षत्रें तीं
शोभलीं जेथ वा रातीं,
उजेडही जेथुनि येतो,
पाउसही जेथुनि पडतो ।।५।।

तेथुनि हे आले येथें;
तेथुनीच तूं आम्हांतें !"
"राहतील येथें का ते ?
मिळतिल का खेळायातें ? ।।६।।

१५. ओस-बिन्दु

आज प्रातः हिमकणोंको पड़ा देखकर कौतुक हुआ—"अरे, ये यहाँ कहाँसे आ गए? कल शामको तो नहीं थे!" ।। १ ।।

कौतुक और उत्सुकतासे, बालक माँसे बोला—"ये बड़े भले मालूम देते हैं, जैसे मोतियोंके दाने! ।। २ ।।

माँ-माँ! बता दे भला ये यहाँ कहाँसे आ टपके? सूरजकी इन किरणोंमें, देखो, ये कैसे चमचमा रहे हैं! ।। ३ ।।

मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है। बताओ तो, पहले ये कहाँ थे?" माँने बालकको चूमकर ऊपर उँगली उठाकर कहा—।। ४ ।।

"रातमें चाँद और नक्षत्रोंने जहाँसे शोभा छिटकाई थी, जहाँसे रोशनी नीचे आती है, और बरसात भी बरसती है ।। ५।।

वहींसे ये सब आए हैं; वहींसे तू भी हमें प्राप्त हुआ है!" "क्या वे यहाँ रहेंगे? क्या मैं उनसे खेल सकूँगा? ।। ६ ।।

मज गम्मत वाटे, आई,
घेउनि दे मजला कांहीं!"
"नाहीं रे! ते स्वकरांत
येणार गडचा नाहींत; ॥७॥

कौतुक कर बघुनी त्यांतें
असती ते जोंवरि येथें;
सूर्य त्यांस अपुला किरणीं
नेईलचि लौकर गगनीं!" ॥८॥

"जातिल ते लौकर गगनीं"
वदतां गहिंवरली जननी!
गतबाळें तिजला स्मरलीं
डोळ्यांत आंसवें आलीं! ॥९॥

"देवा रे!" मग ती स्फुंदे—
"एवढा तरी लाभूं दे!"
म्हणुनि तिनें त्या बाळासी
धरिलें दृढ निज हृदयाशीं! ॥१०॥

पाहुनि त्या देखाव्याला,
कळवळा कवीला आला;
वेडावुनि तयाच नादें
"खरेंच!" तो पुसतो खेदें—
"होते हिर्मांबदु सकाळीं,
कोठें ते सायंकाळीं?" ॥११॥

माँ, मुझे बड़ा कौतुक लग रहा है ! कुछ कण चुनकर दे दो न ?"
"नहीं रे बेटा, वे हमारे हाथमें नहीं आएँगे ! ।।७।।

जब तक वे यहाँ हैं, दूर ही से उनसे खेल । सूर्य उन्हें अपने किरणों द्वारा शीघ्र आकाशमें ले जाएगा ।। ८ ।।

"वे शीघ्र ही आकाशमें उड़ जाएँगे" यह कहते-कहते जननीका हृदय भर आया। अपने मृत बालकोंकी याद कर उसकी आँखें भर आई ।। ९ ।।

फूट-फूटकर रोते रोते वह बोली, "हे भगवन्, इस एकको तो रहने देना।" और इतना कहकर उसने अपने बच्चेको दृढताके साथ हृदयसे चिपटा लिया ।। १० ।।

उस दृश्यको देखकर कवि व्याकुल हो उठा, और पागलोंके समान उसी धुनमें वह पूछ बैठा—"अरे सच, सबेरे जो ओस-कण थे, वे शामको कहाँ गए ?" ।। ११ ।।

———

१६. प्रीति

प्रीति मिळेल का हो बाजारीं ?
प्रीति मिळेल का हो शेजारीं ?
प्रीति मिळेल का हो बागांत ?
प्रीति मिळेल का हो शेतांत ?
प्रीतिची नसे अशि ग मात;
पहा शोधुनी हृदयांत ! ॥१॥

नंदनवनामधीं आला
कल्पलतेला बहर भला;
तिचीं हृदयिं बीजें पडलीं,
प्रीति त्यांतुनी अवतरली !
प्रीतिची असे अशि ग मात;
पहा आपुल्या हृदयांत ! ॥२॥

प्रेमळ कृत्यांची माळ
प्रियजनकण्ठीं तूं घाल;
द्विगुणित मग तो प्रीति तुला
देइल, न धरीं शंकेला ।
प्रीतिचा असा असे ग सौदा—
प्रीतिनें प्रीति सम्पादा ! ॥३॥

हृदयीं आलिंगन पहिलें,
चुम्बन मुखकमलीं वहिलें
आणिक रुचतिल ते चार
प्रीतिला होती उपचार !
प्रीति वाढली, गडे ग, सतत
पहा तूं प्रियजनहृदयांत !
प्रीति असेल का ग बाजारीं ?
वेडे ! प्रीति मिळेल का ग शेजारीं ? ॥४॥

१६. प्रीति

क्यों जी, क्या प्रीति बाजारमें मिलेगी ? क्या वह पास-पड़ोसमें मिलेगी ? क्या वह बाग-बगीचोंमें मिलेगी ? या वह खेतों-बाड़ियोंमें मिलेगी ? अरी, प्रीतिकी ऐसी बात नहीं है; उसे ढूँढ़ना हो तो अपने हृदयमें ढूँढ़ ।। १ ।।

नन्दनवनकी कल्पलतामें बहार आई और उसके बीज हमारे हृदयोंमें गिरे। उनमेंसे प्रीति अंकुरित हुई। प्रीतिकी यह बात है। अपने हृदयोंको खोलकर देख ।। २ ।।

प्रेमपूर्ण कृतियोंकी माला, तू अपने प्रियके गलेमें पहना; तब तुझे वह दुगुना प्रेम देगा, इसमें कोई शंका नहीं। प्रीतिका सौदा इसी तरह होता है कि इस हाथ दो और उस हाथ लो। प्रीतिसे ही प्रीतिका सम्पादन होता है ।। ३ ।।

दो हृदयोंका प्रथम आलिंगन और परस्पर प्रथम चुम्बन और रतिके अन्य प्रकार ही प्रीतिके उपचार हैं। हे सखी ! देख, प्रियजनोंके हृदयोंमें प्रीति इसी तरह बढ़ी है। क्यों री, अब तू ही बता, क्या प्रीति हाट-बाजारकी चीज है ? अरी पगली, क्या प्रीति पास-पड़ोसमें मिलेगी ? ।। ४ ।।

———

१७. प्रत

[दिंडी]

सिद्ध झालों मी दूर जावयाला,
कण्ठ तेव्हां तव फार भरुनि आला;
मला म्हटलें तूं गद्‌गद् स्वरानें
"खुशालीचें तें वृत्त लिहित जाणें!" ॥१॥

"लिहिन" म्हटलें मीं तुला आश्वसाया,
पुढिल केला मीं मुळीं नच विचार;
करीं घेतां परि पत्र हें लिहाया,
खुशालीचें क्षीणत्व दिसे फार! ॥२॥

लोचनांला या होसि तूं प्रकाश,
मदीयात्म्याचा तूंच गे विकास;
नाडि माझी तव करीं वाहताहे,
हृदय माझें तव उरीं हालताहे! ॥३॥

करा अपुल्या तूं पहा चांचपून,
उरा आपुलिया पहा तपासून;
प्रकृति माझीही तिथें तुज कळेल,
विकृति माझी तुज तिथें आढळेल! ॥४॥

१७.-के प्रति

जब मैं दूर जानेके लिए तैयार हो गया, तब तुम्हारा गला बहुत भर आया; गद्‌गद स्वरमें तुमने मुझसे कहा—"राजी खुशीकी चिट्ठी बराबर देते रहना!" ॥ १ ॥

"जरूर"—तुम्हें आश्वस्त करनेके लिए तब मैंने कहा था। उस समय मैंने तनिक भी नहीं सोचा था। लेकिन, जब कि मैं पत्र लिखने बैठा हूँ, तो मुझे मेरा कुशल-क्षेम क्षीण नजर आ रहा है! ॥ २ ॥

मेरी इन आँखोंकी ज्योति तुम हो। मेरी आत्माका विकास तुम्हीं हो। मेरी नाड़ी तुम्हारे करोंमें चलती हैं। मेरा दिल तुम्हारे सीनेमें धड़कता है ॥ ३ ॥

अपने हाथको टटोलकर देखो, अपनी छातीको बारीकीसे परखो, मेरी तन्दुरुस्तीका पता तुम्हें वहीं चल जाएगा, और बीमारीका भी ॥ ४ ॥

———

१८. भृंग

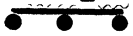

[मणिबंध]

भृंगा ! दंग अहा ! होसी,
गुंगत धांव वनीं घेसी;
तुजमागुनि वाटे यावें,
गोड फुलें चुम्बित गावें ! ।।१।।

रवि येत असे उदयातें,
अरुणतेज विलसत दिसतें;
तरी तिमिर हें विरल असे,
धुकें भरुनि न स्पष्ट दिसे ! ।।२।।

कविच्या हृदयीं उज्ज्वलता
आणिक मिळती अंधुकता;
तीच स्थिति ही भासतसे,
सृष्टी कवयित्रीच दिसे ! ।।३।।

तिच्या कल्पना या गमती
कलिका येथें ज्या फुलती
सुगंध यांतुनि जो झुकतो
रस त्यांतिल तो पाझरतो ! ।।४।।

भृंगा ! आणि तुझें गान
सृष्टीचें गमतें कवन !
गा ! तूं गा ! नादी भ्रमरा !
मी गणमात्रा जुळणारा ! ।।५।।

शुक पंजरबन्धीं घालूं
त्या पढवूं नरवाग् बोलूं,
श्रुतिवैचित्र्या बघणारे
आम्ही मात्रा जुळणारे ! ।।६।।

१८. भ्रमर

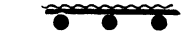

रे भृंग ! तू अपने आपमें कितना मस्त है ? गुंजार करते हुए तू वनोंकी ओर दौड़ता है। इच्छा होती है कि तेरे पीछे पीछे जाऊँ और मधुर सुमनोंको चूमते हुए गाऊँ ।। १ ।।

सूर्योदय हो रहा है। अरुणका तेज फैल रहा है। फिर भी किंचित् अन्धकार बचा हुआ है। कुहरा (धुध) छाया हुआ है। साफ साफ नहीं दिखाई देता ।। २ ।।

कविके हृदयमें उज्ज्वलताके साथ साथ अन्धुकता भी रहती है। सृष्टिकी भी लगभग वही हालत है, मानों वह भी कवियित्री बन गई हो ।। ३ ।।

सृष्टिमें जो कलिकाएँ खिल रही हैं, वे ही मानों उस कवियित्री की कल्पनाएँ हैं। उनसे जो सुगन्ध फैल रही है, वही मानों रस निर्झर है ।। ४ ।।

रे भ्रमर ! ऐसा लगता है कि तेरा गीत सृष्टि-रूपी कवयित्रीका काव्य है ! दीवाने भ्रमर, तू गाए जा। गाए जा। तेरे आगे मैं सिर्फ गणों और मात्राओंकी जोड़-जाड़ करनेवाला हूँ ।। ५ ।।

हम तोतेको पिंजरेमें बन्द करते हैं, उसे आदमीकी बोली सिखाते हैं, और तब उसकी आवाज विचित्रताके कारण हमें अच्छी लगती है। वैसे ही वह कविता भी हमें रुचती है, जिसमें श्रुतिवैचित्र्य हो। हे भ्रमर ! तेरी तुलनामें हम सिर्फ गण-मात्राओंकी जोड़तोड़के कवि हैं ।। ६ ।।

'कवि' आम्हांलागुनि म्हणणें
कविशब्दार्था लोळवणें !
अस्मद्गान नव्हे 'गान'
तें गाना चिंध्यादान ! ॥७॥

परंतु भृंगा ! तव गान
परमानंदें परिपूर्ण !
उदासीन ही जगाविशीं
तव तन्मयता सृष्टीशीं ! ॥८॥

अस्मदीय हृदयीं ठरलें
कीं जग हें दुःखें भरलें !
म्हणुनी सुंदरतेलाही
कुसें अम्हां दिसती पाहीं ! ॥९॥

परि तव गानांतून, अले !
थबथबला हा भाव गळे :—
"गुङ गुङ गुङ गुङ !—भान नसे !
सृष्टि अहा गुङ ! मधुर असे ! ॥१०॥

"दुःख—वदा तें कवि असे ?
अश्रू—तें हो काय ! कसें ?
फुलें फुलति, परिमल सुटती,
रस गळती—गुङ सौख्य किती !" ॥११॥

जाई, जुई, मोगरी भली,
कमलिनीहि सुन्दर फुलली;
मधु यांचा सेवुनि गोड
पुरवीं तूं अपुलें कोड ! ॥१२॥

प्रीति, चारुता, आनन्द
यांचे गा मधुरच्छन्द;
प्रीति, चारुता, आनन्द
सिंचिति सृष्टीचा कन्द ! ॥१३॥

हमें 'कवि' कहकर पुकारना कवि-शब्दके अर्थको मिट्टीमें घसीटना है। हमारे गीत यथार्थमें 'गीत' नहीं होते, वे तो चिंधियाँ फाड़नेके समान हैं ॥ ७ ॥

परन्तु, रे भ्रमर! तेरा गान, परमानन्दसे परिपूर्ण है। (विकृत) संसारसे तू उदासीन है। लेकिन सृष्टिसे एक-रूप हो गया है, तन्मय हो गया है ॥ ८ ॥

हमारे हृदयमें यह बात बैठ गई है कि यह दुनिया दुःखोंसे भरी है। इसलिए हमें कमनीयतामें भी काँटे दिखाई देते हैं ॥ ९ ॥

परन्तु, रे भ्रमर! तेरे गीतोंमें लबालब भरा हुआ यह भाव चू रहा है—"गुङ्-गुङ्-गुङ्-गुङ्! मदमस्त, भानरहित! सृष्टि भी इसी तरहसे अपने में गुङ्ग है, मस्त है—और अत्यन्त मधुर है ॥ १० ॥

"दुःख? बताओ तो कैसा होता है? आँसू? अरे वे क्या हैं? कैसे आते हैं? देखो, फूल खिल रहे हैं, सुगन्ध फैल रही है, रस झर रहा है—सुख कितना गुङ्ग है, मग्न है!" ॥ ११ ॥

जाई, जुई और मोगरेकी कलियाँ कितनी अच्छी हैं! कमलिनी सुन्दरतासे खिली हुई है। तू इनका मधु सेवन करता है और अपनी इच्छाओंकी पूर्ति करता है ॥ १२ ॥

तू प्रीति, चारुता और आनन्दके गीत मधुर छन्दोंमें गा। प्रीति, चारुता और आनन्द ही तो सृष्टिके कन्दको सींचते हैं ॥ १३ ॥

वरुनि नभांतुनि चंडोल
ओतितसे हेची बोल;
खालीं तव गुंजारव हा
प्रतिपादितसे तेंचि अहा ! ॥१४॥

[वसंततिलका]

होईल का रसिकता तव लब्ध मातें ?
गुंगी मिळेल मजला तव केधवा ते ?
येतें मनांत तुझियासम भृंग व्हावें,
वेलींमधूनि कलिकांवरूनी झुकावें ! ॥१५॥

———————

ऊपर आसमानसे चंडूल ये ही बोल उँड़ेल रहा है; नीचे धरतीपर तेरी गुँजार इसी बातका प्रतिपादन कर रही है। अहा!॥ १४॥

तुझ-जैसी रसिकता क्या मुझे कभी प्राप्त होगी? तुझ-जैसी तन्मयता-तल्लीनता मुझे कब मिलेगी? मन होता है कि बस, तुझ-जैसा ही मधुकर बन जाऊँ और लतापरसे कलियोंपर झुक जाऊँ॥ १५॥

———

१९. फुलपांखरूं

[अंजनीगीत]

जेथें हिरवळ फार विलसते,
लताद्रुमांची शोभा दिसते,
तेथें फुलपांखरूं पहा हें—
सुंदर बागडतें ! ॥१॥

कलिकांवरुनी, पुष्पांवरुनी,
गन्धयुक्त अवकाशामधुनी,
पुष्पपरागा सेवित हिंडे—
मोदभरें करुनी ! ॥२॥

तरल कल्पना जशी कवीची,
सुन्दर विषयांवरुनी साची
भ्रमण करी, गति तशीच वाटे—
फूलपांखराची ! ॥३॥

वा मुग्धेची जैशी वृत्ति
पतिसहवासस्वप्नावरती
विचरे फुलपांखराची तशी—
हालचालही ती ! ॥४॥

निर्वेधपणें इकडे तिकडे
वनश्रींतुनी अहा ! बागडे;
त्याचा हेवा हृदयीं उपजुनि
मन होई वेडें ! ॥५॥

तिमिरीं आम्हीं नित्य रखडणें,
विवंचनांतचि जिणें कंठणें,
पुष्पपतंगस्थिति ही कोठुनि—
आम्हांला मिळणें ! ॥६॥

१९. तितली

जहाँ हरियाली खूब सरस रही है, लता-द्रुमोंकी शोभा दिखाई देती है, वहाँ देखो, देखो ! सुन्दर यह तितली फुदक रही है ॥ १ ॥

कलिकाओं तथा सुमनोंपरसे और गन्ध भरे अवकाशमेंसे, पुष्प-परागोंका सेवन करती हुई तितली आनंदित होकर विहर रही है ॥ २ ॥

कवियोंकी तरल कल्पना जैसे सुन्दर विषयोंपर मँडराती-घूमती रहती है, तितलीकी गति भी लगभग वैसी ही लगती है ॥ ३ ॥

अथवा, मुग्धा नारीकी वृत्ति जिस प्रकार पति-सहवासके स्वप्नोंमें विचरण करती रहती है, तितलीका विचरण भी लगभग वैसा ही है ॥ ४ ॥

अहा ! वह कैसे बिना किसी रुकावटके वन-श्रीमेंसे फुदकती फिर रही है ! उसको देखकर हृदयमें ईर्ष्या उत्पन्न होती है और मन पागल हो उठता है ॥ ५ ॥

अरे, हमें तो अँधेरेमें ही सदा घिसटना पड़ता है और चिन्ताओंके बीच जिन्दगी बसर करनी पड़ती है। हमें फूलोंमें रमी हुई तितलीकी स्थिति कहाँ नसीब है ! ॥ ६ ॥

असे यास का चिन्ता कांहीं ?
यास 'उद्यां' चा विचार नाहीं,
अकालींच जो आम्हां न्याया—
मृत्युमुखीं पाही ! ॥७॥

बहु सौख्याची कुसुमित सृष्टि,
तींत वसे हें, न कधीं कष्टी,
ग्रीष्माचें खर रूप विलोकी—
नच याची दृष्टि ! ॥८॥

'सर्व विनाशी असती प्राणी,'
ही मज खोटी वाटे वाणी;
फूलपांखरूं—मरण पाहिलें—
आहे का कोणीं ? ॥९॥

[वसंततिलका]

जें रम्य तें बघुनियां मज वेड लागे;
गाणें मनांत मग होय सवेंचि जागें;
गातों म्हणून कवनीं फुलपांखरातें,
व्हायास सौख्य मम खिन्न अशा मनातें.

———————

क्या इसे किसी बातकी चिन्ता है? उसे वह 'कल' की चिन्ता नहीं सताती जो हमें असमय ही मृत्यु-मुखमें ले जाना चाहती है ।। ७ ।।

फूलोंकी दुनिया बहुत सुखोंसे भरी हुई है। उसमें यह तितली रहती है। उसे कभी कष्ट नहीं होता। उसकी दृष्टि ग्रीष्मके खर-रूपको देख सके, ऐसी होती ही नहीं है ।। ८ ।।

'सब प्राणियोंके लिए मृत्यु अनिवार्य है'—यह कथन मुझे अन्यथा ही लग रहा है। तितलीकी मृत्यु कभी किसीने देखी है? ।। ९ ।।

जो रम्य है उसे देखकर मैं पागल हो उठता हूँ और तब मेरे मनमें एकाएक गीत जग उठते हैं। इसीलिए मैं तितलियोंके गीत गाता हूँ, ताकि मेरे गमगीन मनको कुछ सुख मिले ।। १० ।।

———————

२०. पुष्पाप्रत

[अंजनीगीत]

पुष्पा ! सुन्दर किती तूं दिससी !
सौकुमार्य माधुर्यहि धरिसी !
तुजला बघतां मन माझें तूं—वेडें रे करिसी ! ।।१।।

तूं आणिक मी पूर्वी होतों
खेळगडी रे ? स्मरुनि अहा तो !
काळ सुखाचा, आतां चित्ता—खेद फार होतो ! ।।२।।

मुग्ध मधुरता चित्तीं घेतां,
पूर्वी अपुली होती समता;
गेला गेला काळ अहह तो ! —फेर किती आतां ! ।।३।।

सौकुमार्य तव अजुनी आहे !
हंसतचि आहे हास्य तुझें हें;
परि मम भाळीं ढग अश्रूंचा—हाय ! डवरलाहे ! ।।४।।

तुजला पाहुनि मीं नाचावें,
दुडदुड धांवत तुजशीं यावें,
प्रेमें तुजला स्वकरीं घेउनि—सखया चुंबावें ! ।।५।।

आतांहि गमे घ्यावें तुजला,
परी सुटतसे कंप कराला !
दिव्यत्वाला स्पर्श कराया—भय वाटे मजला ! — ।।६।।

रम्य धुक्याची अद्भुत सृष्टि
तींत उघडिसी आपुली दृष्टि,
मग तो भास्वान् तुजवरि करितो—तेजाची वृष्टि ! ।।७।।

मरुद्गण तुझ्या पाळणियाला
तत्पर आंदोलन द्यायाला,
पक्षिमुखांहीं स्वर्ग तुझ्यावरि—गाई गीतांला ! ।।८।।

२०. पुष्पके प्रति

पुष्प, तू कितना सुन्दर दिख रहा है! तू सुकुमारता, एवं मधुरतासे परिपूर्ण है। तुझे देखते देखते मेरा मन पागल हो उठता है॥ १॥

याद है, तू और मैं दोनों पहले साथ-साथ खेला करते थे? अहा! जब सुखके दिन याद आते हैं, तो अबकी दुरवस्थाको देखकर चित्तको बहुत दुःख होता है॥ २॥

सोचता हूँ, मुग्ध मधुरताकी दृष्टिसे पहिले हमारे बीचमें कितना साम्य था! अरे रे! वह समय बीत गया! अब उसमें कितना अन्तर पड़ गया है॥ ३॥

तेरी सुकुमारता अब भी कायम है। तेरा हास्य आज भी मुखरित है। परन्तु हाय, मेरे भालपर आँसुओंके बादल घिर आए हैं॥ ४॥

ऐ दोस्त तुझे देखकर जी होता है कि मैं नाचूँ, (दुड़दुड़) दौड़ते हुए तेरे पास आऊँ, और प्रेमसे तुझे हाथमें लेकर चूम लूँ॥ ५॥

अब भी लग रहा है कि तुझे ले लूँ, पर हाथ काँप रहा है! दिव्यताको स्पर्श करनेमें मुझे डर लगता है! ॥ ६॥

रम्य कुहरेकी अद्भुत सृष्टिमें तू अपनी पलकें खोलता है; और फिर प्रकाशमान सूर्यनारायण तुझपर अपनी तेजोराशि उँडेल देते हैं॥ ७॥

मरुद्गण तेरे पालनेको झुलानेके लिए तैयार रहते हैं। पक्षियोंके मुँहसे स्वर्ग ही तेरे लिए गीत गाया करता है। ॥ ८॥

रम्य तुझें बा जिणें कितीतरि,
परिमलयश तव जाय भूवरी,
कालहि तुझिया दिव्यत्वाला—वाटे नमन करी ! ।।९।।

चिरतरुणा रे ! चिररुचिरा रे !
तुजसन्निध तो वास बरा रे !
तुजमजमध्यें परी केवढी—आहे रुंद दरा रे ! ।।१०।।

काळोखाच्या जगामधें या,
मृत आशांच्या चितांवरुनि या
पिशाच्च माझें भटकत आहे—शांति नसेचि तया ! ।।११।।

मच्चित्ताच्या क्षितिजावरती
नृत्याला जीं स्वप्नें करिती
निदान, त्यांच्यामध्यें मजला—भासो तव मूर्ति ! ।।१२।।

[इंद्रवज्रा]

सौभाग्य पुष्पा ! तव गावयाला
मी पात्र नाहीं गमतें मनाला;
भुंगे तुझे स्तोत्र सुरेख गाती
ऐकूनि तें सर्व पळोत खंती ! ।।१३।।

———————

तेरा जीना कितना रमणीय है! तेरा परिमल-रूपी यश धरतीपर फैल रहा है। ऐसा लगता है कि काल भी तेरी दिव्यताके आगे नतमस्तक हो रहा है ।। ९ ।।

रे चिर तरुण! रे चिर रुचिर!! तेरे सान्निध्यमें रहना कितना अच्छा है! लेकिन, तेरे-मेरे बीचमें कितनी बड़ी खाई है! ।।१०।।

इस अन्धकारकी दुनियामें मृत आशाओंकी चिताओंपर मेरा पिशाच भटक रहा है—उसे तनिक भी शान्ति नहीं है ।। ११ ।।

मेरे चित्तके क्षितिजपर जो स्वप्न नाचनेके लिए आतुर हैं, कम-से-कम उनमें मुझे तेरे रूपका आभास होता रहे ।। १२ ।।

हे पुष्प, मैं यह मानता हूँ कि तेरे सौभाग्यके गीत गानेकी पात्रता मुझमें नहीं है। भ्रमर तेरे स्तुति-स्तोत्र सुँदरतासे गाते हैं। उन गीतोंको सुनकर मेरी खिन्नताएँ गायब हो जाएँ ।।१३।।

———

२१. हरपलें श्रेय

त्रिखंड हिंडुनि धुंडितसें,
न परि हरपलें तें गवसे ।। ध्रु० ।।
होत्यें अजाण माहेरीं
तों खेळ खेळल्यें परोपरी
लटूपटीच्या घरदारीं
लटकीच जाहल्यें संसारी ;
तेव्हांचें सुख तें आतां
खऱ्या घरींहि न ये हाता !
चुकचुकल्यापरि
वाटे अन्तरि,
होउनि बावरि
निज श्रेय मी पाहतसें,
न परि हरपलें तें गवसे ! ।।१।।
प्राप्त जाहलें तें तुजला
तूं मागितलें जें देवाला,
ज्याचें मोल तुवां दिधलें
तेंच तुझ्या पदरीं पडलें—
या वचनें चुकला सौदा
उमगुनि हृदया दे खेदा !
दिलें हिरण्मय,
हातीं मृण्मय ;
हा हतविनिमय !
परत मला मम मिळे कसें ?
न परि हरपलें तें गवसे ! ।।२।।

२१. खोया हुआ श्रेय

[उदात्त बुद्धिके लिए इस संसारमें कोई राम नहीं है। जिस अलौकिक तत्वकी खोजमें वह रहती है, क्या उसकी प्राप्तिके लिए, उसपर उसका पूरा स्वत्वाधिकार होनेपर भी, उसे लगातार घुलना नहीं पड़ता ?]

त्रिभुवनमें घूम घूमकर खोज रही हूँ, पर जो खो गया है वह नहीं मिलता !

मैं जब मायकेमें अजान-अल्हड़ थी, तब तरह-तरहके खेल खेला करती थी, झूठ-मूठके घर-बारमें, झूठ-मूठकी गृहिणी बना करती थी। पर उस समयका वह सुख, आज इस सचमुचके घरमें भी नसीब नहीं होता ! अन्तःकरणमें कुछ भूला-भूला-सा लगता है और मैं बावली होकर अपने श्रेयस्को ढूँढ़ रही हूँ। पर जो खो गया है वह नहीं मिलता ।।१।।

तुझे वही मिला जो तूने प्रभुसे माँगा था। वही चीज तेरे पल्ले पड़ी, जिसका तूने मूल्य चुकाया था। सौदा करनेमें वाणी द्वारा कुछ भूल जरूर हुई। उसे बूझकर अपने हृदय (आप) को दोष दे। तूने स्वर्ण-मय दिया और तेरे हाथ मृण्मय लगा; कैसा बदनसीब है यह विनिमय !

अरे, जो मेरा था, वह (श्रेयस्) मुझे वापस कैसे मिलेगा ? पर जो खो गया है, वह तो नहीं मिलता ।।२।।

किरण झरोक्यांतुनी पडे,
अणूंसवें त्यांतून उडे
परोक्षविषयीं मन माझें
विसरुनियां अवघीं काजें;
हयगय त्यांची मज जाची
परि न मला पर्वा त्याची !
वेडी होउन
बसल्यें अनुदिन
एकच घेउन--
मज माझें लाभेल कसें ?
न परि हरपलें तें गवसे ! ॥३॥

जेथें ओढे वनराजी
वृत्ति रमे तेथें माझी ;
कारण कांहीं साक्ष तिथें
मम त्या श्रेयाची पटते;
म्हणुनी विजनीं मी जात्यें,
स्वच्छन्दें त्या आळवित्यें
स्वभाव दावुनि
परि तें झटदिनि
जाई लोपुनि !
मग मी हांका मारितसें !
न परि हरपलें तें गवस ! ॥४॥

झरोखेमेंसे किरण आ रही है। उसके अणुओंके साथ अप्रत्यक्षका चिंतन करनेवाला मेरा मन समस्त कर्तव्योंको भुलाकर उड़ता है। कर्तव्योंकी यह उपेक्षा मुझे क्लेश पहुँचाती है, लेकिन मुझे उसकी परवाह नहीं हैं। उन्मत्त होकर मैं रात दिन बैठी रहती हूँ। मुझे बस एक ही धुन है कि मेरा अपना मुझे कैसे मिलेगा? पर जो खो गया है, वह नहीं मिलता! ॥३॥

जहाँ झरने हैं और वन-श्री छाई हुई है, वहाँ मेरी वृत्ति रम जाती है। कारण यह कि वहाँ मुझे उस श्रेयस्का कुछ प्रमाण मिल जाता है। इसलिए मैं निर्जन एकान्तमें जाती हूँ और स्वच्छन्द होकर उन्मुक्त भावसे उसकी आराधना करती हूँ। वह 'स्व' भाव प्रकट करता है, पर बातकी बातमें झट लुप्त हो जाता है। तब मैं उसे पुकार-पुकार कर बुलाती हूँ; पर जो खो गया है वह नहीं मिलता! ॥४॥

भीडभाड माझी फिटली,
जग म्हणतें कीं 'ही उठली ! '
जनमर्यादा धरुनि कसें
अमर्याद तें मज गवसे ?
एक शब्द बोलेन जरी
सकलां कुण्ठित करिन तरी !
अशी आगळी
परी बावळी
आहे दुबळी;
कांकीं त्याविण सुचत नसे !
न परि हरपलें तें गवसे ! ।।५।।

स्वपतिचितेवरि उडी सती
संसृतिविमुखी घेई ती;
दीपशिखेवरि पतंग तो
प्रेमें प्राणाहुति देतो ;
मी न करिन का तेंवि तधीं
माझें मज लाभेल जधीं !

मजपासोनी
हाय ! हिरोनी
नेलें कोणीं ! —
म्हणुनि जीव पाखडीतसें
न परि हरपलें तें गवसे ! ।।६।।

———————

मेरी लोक-लाज मिट गई है। लोग कहते हैं कि "यह दुनियासे उठ गई है!" लोक-मर्यादाको निबाहते हुए भला वह मर्यादा रहित मुझे कैसे मिलता? यदि मैं एक भी शब्द बोलूँ, तो सब कुण्ठित हो जाएँगे। ऐसी हूँ मैं! लेकिन बावली हूँ और दुर्बल हूँ। कारण, बिना उस श्रेयस्के मुझे कुछ सूझता ही नहीं। पर जो खो गया है, वह नहीं मिलता ।। ५ ।।

जिस प्रकार सती-साध्वी अपने पतिकी चितामें संसारसे मुँह मोड़कर कूद पड़ती है; जिस प्रकार पतंग दीप-ज्योतिपर प्रेमपूर्वक अपने प्राणोंकी बलि चढ़ा देता है; उसी प्रकार मेरा अपना मुझे जब प्राप्त होगा, तब मैं क्या उसपर अपने प्राण न्यौछावर नहीं कर दूंगी? हाय! मुझसे मेरा परम श्रेयस् कौन छीन ले गया है? इसीलिए तो प्राणोंको उँडेल रही हूँ। पर जो खो गया है, वह नहीं मिलता ।। ६ ।।

———

२२. झपूर्झा !

हर्षखेद ते मावळले,
हास्य निमालें,
अश्रु पळाले ;
कण्टकशल्यें बोंथटलीं,
मखमालीची लव वठली ;
कांहीं न दिसे दृष्टीला
प्रकाश गेला,
तिमिर हरपला ;
काय म्हणावें या स्थितीला ?—
झपूर्झा ! गडे झपूर्झा ! ॥१॥

हर्षशोक हे ज्यां सगळें,
त्यां काय कळे ?
त्यां काय वळे ?
हंसतिल जरि तें आम्हांला,
भय न धरूं हें वदण्याला :—
व्यर्थीं अधिकचि अर्थ वसे
तो त्यांस दिसे,
ज्यां म्हणति पिसे.
त्या अर्थाचे बोल कसे ?—
झपूर्झा ! गडे झपूर्झा ! ॥२॥

२२. *झपूर्झा !

[हमें जो व्यर्थ लगता है, उसीमेंसे महात्मा संसारके कल्याणकी चीजें निकाल लेते हैं। उन महात्माओंकी स्थितिकी कल्पना करते हुए यदि यह गीत पढ़ा जाए, तो वह दुर्बोध नहीं रहेगा।]

हर्ष और खेद अस्तंगत हुए। हास्य शान्त हो गया। आँसू गायब हो गए। कण्टकोंके शल्य घिस गए। मखमलकी मृदुता मिट गई। दृष्टिको कुछ भी सूझ नहीं रहा है। प्रकाश लुप्त हो गया। तिमिर भी खो गया। इस स्थितिका किन शब्दोंमें वर्णन करेंगे?—झपूर्झा! री सखी, झपूर्झा! ॥ १ ॥

जिन्हें हर्ष-शोक ही सब कुछ है, वे क्या समझेंगे? वे क्या बूझेंगे? चाहे वे हमारी हँसी ही उड़ाएँ, पर हम निःसंकोच कह देंगे कि "व्यर्थमें ही विशेष अर्थ रहता है। वह (विशेष अर्थ) उन्हें ही दिखाई देता है, जिनको लोग पागल कहते हैं! उस अर्थके बोल कैसे होते हैं? —झपूर्झा! री सखी, झपूर्झा! ॥ २ ॥

---

*महाराष्ट्रकी बालिकाएँ 'झिम्मा' नामका खेल गोल बाँधकर खेलती हैं। बगलकी सहेलीके करतल पर ताली बजाकर 'जा पोरी, जा' (जा छोरी, जा) उच्चारण करती हुई चक्राकार फेरमें वे नाचती हैं। फेरेकी गति धुनके साथ बढ़नेपर 'जा पोरी, जा' का रूपान्तर 'झपूर्झा' में होता है।

ज्ञाताच्या कुंपणावरून,
धीरत्व धरून,
उड्डाण करून,
चिद्घनचपला ही जाते,
नाचत तेथें चकचकते ;
अंधुक आकृति तिस दिसती,
त्या गाताती
निगूढ गीती ;
त्या गीतीचे ध्वनि निघती
झपूर्झा ! गडे झपूर्झा ! ॥३॥

नांगरल्याविण भुई बरी
असे कितितरी ;
पण शेतकरी
सनदी तेथें कोण वदा ?—
हजारांतुनी एकादा !
तरी न तेथुनि वनमाला
आणायाला,
अटक तुम्हांला;
मात्र गात हा मंत्र चला—
झपूर्झा ! गडे झपूर्झा ! ॥४॥

पुरुषाशीं त्या रम्य अति
नित्य प्रकृति
क्रीडा करिती ;
स्वरसंगम त्या क्रीडांचा
ओळखणें, हा ज्ञानाचा—
हेतु ; तयाची सुन्दरता
व्हाया चित्ता—
प्रत ती ज्ञाता,
वाडें कोडें गा आतां—
झपूर्झा ! गडे झपूर्झा ! ॥५॥

ज्ञातके बाड़ेपरसे हिम्मत बाँधकर, ऊँची उड़ान लेकर, वह देखो चिद्घन-चपला कूद गई ! और वह नाचती हुई वहाँ चमक रही है। उसे धुँधली आकृतियाँ दिखाई दे रही हैं, इसलिए वह रहस्यमय गीत गाती है। उन गीतोंमें जो स्वर गूँज रहे हैं, वे हैं—झपूर्झा ! री सखी, झपूर्झा ! ॥३॥

ऐसी कई जमीनें होती हैं, जो बिना हल चलाए ही अच्छी होती हैं। भला बताइए तो, उनको कौन-सा सनद प्राप्त किसान गोड़ता है ?—कोई नहीं। वनमाला लानेके लिए वहाँ तुम्हें कोई न रोकेगा ! सिर्फ तुम इस मन्त्रको गाते जाना—झपूर्झा ! री सखी, झपूर्झा ! ॥४॥

उस अति रम्य पुरुष (चैतन्य) से प्रकृति (जड़ सृष्टि) नित्य क्रीड़ा-किलोल किया करती है; उन क्रीड़ाओंका स्वर-संगम पहचानना ही ज्ञानका हेतु है। उसकी सुन्दरताका ज्ञान चित्तमें करना हो, तो चावसे अब गाओ—झपूर्झा ! री सखी, झपूर्झा ! ॥५॥

सूर्यचन्द्र आणिक तारे
नाचत सारे
हे प्रेमभरें
खुडित खपुष्पें फिरति जिथें,
आहे जर जाणें तेथें,
धरा जरा निःसंगपणा
मारा फिरके,
मारा गिरके,
नाचत गुंगत म्हणा, म्हणा—
झपूर्झा! गडे झपूर्झा! ॥६॥

———

जहाँ सूर्य, चन्द्र और तारे सब प्रेममें पगे नाचते हैं, जहाँ आकाशके फूलोंको तोड़ते हुए घूमा जा सकता है, यदि वहाँ जाना हो तो कुछ निःसंग बनो, मस्त होकर खूब फेरे लगाओ, खूब नाचो और नाचते हुए तन्मय होकर गाओ, गाओ—झपूर्झा ! री सखी, झपूर्झा ! ।।६।।

———————